जिगर मुरादाबादी

भारतीय साहित्य के निर्माता

जिगर मुरादाबादी

लेखक

जियाउद्दीन अंसारी

अनुवादक

परमानन्द पांचाल

साहित्य अकादेमी

Jigar Moradabadi : Hindi translation by Parmanand Panchal of Ziauddin Ansari's monograph in Urdu. Sahitya Akademi, New Delhi (2000), Rs. 25.

प्रथम संस्करण : 1991
पुनमुर्द्रण : 1996
पुनमुर्द्रण : 2000

साहित्य अकादेमी

मुख्य कार्यालय
रवीन्द्र भवन, फीरोज़शाह रोड़, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथी मंजिल, 23 ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर मार्ग, कलकत्ता 700053
गुना बिल्डिंग, दूसरी मंजिल, 304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट,
चेन्नई 600018
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400014
केन्द्रीय महाविद्यालय परिसर, डॉ० अम्बेडकर विधि, बैंगलोर 560001

ISBN 81-7201-147-4

मूल्य : पच्चीस रुपये

मुद्रक : अजित प्रिन्टर्स, दिल्ली

अनुक्रम

जीवनी	7
आमोद-प्रमोद	29
कला	43

1
जीवनी

पूर्वज

जिगर के पूर्वज मौलवियों के परिवार से सम्बन्धित थे। यह परिवार शिक्षा की दृष्टि से बहुत प्रतिष्ठित परिवार था, जिसे आध्यात्मिक और सांसारिक दोनों ही विद्याओं में निपुणता प्राप्त थी। इस परिवार के लोग विभिन्न कालों में मुग़ल शासकों के यहाँ विभिन्न पदों पर रहे थे। ख़ुद जिगर का कहना है कि उनके पूर्वज मौलवी मुहम्मद समीअ सम्राट् शाहजहाँ के शिक्षक रह चुके थे। उन्हीं के शब्दों में—

"मेरा परिवार मौलवियों का परिवार था। मूल परिवार दिल्ली का था। महिलाओं की भाषा हमारे यहाँ अपने आपमें विशुद्ध और सुरक्षित थी। वे बहुधा ऐसे मुहावरों का प्रयोग करती थीं कि मन प्रसन्न हो जाता था। मेरे पूर्वज मौलवी समीअ साहब सम्राट् शाहजहाँ के शिक्षक थे। दिल्ली के इस परिवार के दो भाग हो गए। इसका एक भाग आज़मपुर बाश्ता और दूसरा मुरादाबाद में बस गया।"[1]

जिगर शेख़ सिद्दीक़ी थे। उनकी वंश परम्परा 30 रिश्तों से शेख़-उल-मशायख़ हज़रत शहाबुद्दीन सुहरावर्दी और 36 रिश्तों में हज़रत अबुबकर सिद्दीक़ पर आधारित है।

जिगर के पिता मुहम्मद अली नज़र, दादा हाफ़िज़ अहमद अली और परदादा हाफ़िज़ नूर मुहम्मद, सब-के-सब कवि थे। मुहम्मद अली नज़र के दो भाई मौलवी अली अकबर और अली ज़फ़र भी कवि थे। इस प्रकार जिगर को कविता का शौक़ विरासत में मिला था। जिगर का कहना है—

"मेरे परदादा स्व. हाफ़िज़ नूर मुहम्मद और दादा स्व. हाफ़िज़ मौलवी अमजद अली दोनों कवि थे। श्रद्धेय पिताजी से सुना है कि उनके बुज़ुर्ग कवि थे और स्व. दादा जी का एक शे'र याद है जो मुझे बेहद पसन्द है। शे'र है—

---

1. हयाते जिगर का एक बाब, जिगर की ज़बानी—लेखक : क़ैसी-उल-फ़ारूक़ी, क़ौमी आवाज, लखनऊ, सितम्बर, 1960, पृ. 4

लुत्फ़े जानाँ[1] रफ़ता-रफ़ता[2] आफ़ते जाँ हो गया,
अब्रे रहमत[3] इस तरह बरसा कि तूफ़ाँ हो गया।

मेरे पिता मौलवी मुहम्मद अली नज़र भी कवि थे। उनका भी एक शे'र याद है—

"वह यहाँ आए, हम वहाँ पहुँचे,
उनको शिकवा, हमें गिला न रहा।"

मेरे चाचा अली ज़फ़र भी कवि थे। उनका एक मक़ता[4] याद है—

हो ही जाता है तख़ल्लुस[5] पे 'ज़फ़र' का धोका,
ऐ 'ज़फ़र' बन्दिशे अशआर करूँ या न करूँ।

मेरे ताऊ मौलवी अली अकबर साहिब भी कवि थे और अकबर तख़ल्लुस करते थे। उनके पुत्र मौलवी हकीम मुहम्मद अहमद साहिब अब भी मुरादाबाद में मौजूद है। मेरे एक फुफेरे भाई मुहम्मद हुसैन साहिब पुत्र इश्फ़ाक़ हुसैन साहिब फ़ारूक़ी भी कवि थे। मर्सिया बहुत अच्छा पढ़ते थे।[6]

इस प्रकार इस बात का भली-भाँति अनुमान लगाया जा सकता है कि जिगर के परिवार में काव्य सम्बन्धी चर्चाएँ एक आम बात थी और जिस वातावरण में जिगर ने आँखें खोलीं और उनका पालन-पोषण हुआ, उस पर साहित्यिक रंग पूरी तरह चढ़ा हुआ था।

जन्म

जिगर का जन्म 1890 में मुरादाबाद में हुआ था। यद्यपि, उनके जन्म के वर्ष को लेकर विद्वानों में मतभेद है, फिर भी अधिकांश साक्ष्यों के आधार पर 1890 की ही पुष्टि होती है। इसी प्रकार उनके जन्म-स्थान के बारे में भी मतभेद है। उनका मूल निवास-स्थान मुरादाबाद था और इसीलिए वे मुरादाबादी कहलाते हैं। अतः सामान्य रूप से यही मान लिया गया कि वे मुरादाबाद में पैदा हुए थे। ख़ुद जिगर का कहना है कि वे बनारस में पैदा हुए थे। छह माह तक वहीं रहे, इसके बाद मुरादाबाद आ गए। वे कहते हैं—

"मेरा जन्म-स्थान बनारस है। बनारस में टाँक के शासक (सम्भवतः वर्तमान

---

1. प्रेमिका की दया-दृष्टि
2. धीरे-धीरे
3. दया का बादल
4. ग़ज़ल का अन्तिम शेर
5. कवि का उपनाम
6. हयाते जिगर का एक बाब, हज़रत जिगर की ज़बानी—लेखक : कैसी-उल-फ़ारूक़ी, क़ौमी आवाज़, लखनऊ, 19 सितम्बर, 1960, पृ. 4

नवाब के परदादा) के साथ मेरे पिताजी स्व. माजिद अली नज़र साहब रहते थे। मैं वहीं पैदा हुआ। मेरे पिता माजिद फिर मुरादाबाद चले आए। इस समय मेरी उम्र कोई छह माह होगी। मुरादाबाद मेरे पूर्वजों का स्थान था। मैं वहीं बारह-चौदह वर्ष की आयु तक रहा।"[1]

परन्तु जिगर के नज़दीकी सम्बन्धियों और मित्रों का कहना है कि उनका जन्म बनारस में नही, मुरादाबाद में ही हुआ था। उनके पिता को जिगर के जन्म के तुरन्त बाद अपनी बहन की बीमारी के सिलसिले में बनारस जाना पड़ा, जहाँ वह पाँच-छह महीने रहकर मुरादाबाद वापस आ गए। इसलिए जिगर को यह ख़्याल रहा कि वह बनारस में पैदा हुए थे। डॉ. मुहम्मद इस्लाम अपने शोध प्रबन्ध 'जिगर मुरादाबादी : हयात और शायरी' में लिखते हैं—

"सबसे पहले व्यक्ति तो हकीम मुहम्मद अहमद साहिब[2] हैं, जिन्होंने इस पुस्तक के लेखक से 24 दिसम्बर, 1963 की एक भेंट में बताया कि जिगर 1890 ई. में मुरादाबाद में पैदा हुए थे। उनका कहना है जिस कोठरी में जिगर का जन्म हुआ था, वह कोठरी अभी तक मौजूद है।"[3]

इस प्रकार प्रामाणिक रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि अली सिकन्दर जिगर मुरादाबादी का जन्म उनके पैतृक नगर मुरादाबाद में हुआ था।

प्रारम्भिक शिक्षा

तत्कालीन परम्परा के अनुसार जिगर ने उर्दू, फ़ारसी और कुराने करीम की शिक्षा घर पर मौलाना मुहम्मद सिद्दीक़ से प्राप्त की जो धर्म के क्षेत्र में अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान् और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। जिगर के पिता को उनके प्रति विशेष श्रद्धा थी और वे उनकी शिष्य परम्परा में सम्मिलित थे। वे मौलाना रशीद अहमद गंगोही के उत्तराधिकारियों में थे। इस प्रकार जिगर की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा आध्यात्मिक वातावरण में हुई थी जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर आजीवन रहा। यहाँ तक कि उस काल में भी, जब उन पर मदिरापान और उन्मत्तता का भूत सवार रहता था, उन्होंने कभी कोई ऐसा अशोभनीय कार्य नहीं किया जिससे लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची हो।

जिगर ने मौलाना मुहम्मद सिद्दीक़ के अतिरिक्त स्वयं अपने पिता श्री अली मुहम्मद नज़र से भी उर्दू और फ़ारसी पढ़ी। इसके बाद हकीम हाफ़िज कारी

---

1. हयाते जिगर का एक बाब, हजरत जिगर की जवानी, लेखक : कैसी-उल-फ़ारुकी, क़ौमी आवाज़, लखनऊ, 19 सितम्बर, 1960, पृ. 4
2. जिगर के ताऊ मौलवी अली अकबर के पुत्र
3. मुहम्मद इस्लाम; जिगर मुरादाबादी : हयात और शायरी, पृ. 54

अब्दुर्रहमान और मौलवी मुहम्मद इस्माइल बेग के मक़तबों में शिक्षा ग्रहण की। बचपन में जिगर अधिकतर अपने चाचा श्री अली ज़फ़र के साथ रहा करते थे। उनका निवास कुरवी (जिला बाँदा) में था। उनके अनुरोध पर जिगर को अंग्रेज़ी शिक्षा की डगर पर डाला गया। अतः उन्होंने पहले कुरवी और फिर लखनऊ में अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की। किन्तु अंग्रेज़ी शिक्षा में उनकी रुचि नहीं थी। इसलिए नवीं कक्षा से उन्होंने अंग्रेज़ी की पढ़ाई बन्द कर दी। वैसे भी आरम्भिक घरेलू शिक्षा-दीक्षा ने उन्हें इतना कुछ सिखा दिया था कि स्कूल की औपचारिक शिक्षा की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी।

जिगर अधिक अध्ययन के पक्ष में नहीं थे। उनका कहना था कि पुस्तकों के अध्ययन की अपेक्षा महापुरुषों के व्यक्तित्व के अध्ययन से अधिक ज्ञान प्राप्त होता है और व्यक्तित्व के निर्माण एवं बौद्धिक विकास में प्रतिष्ठित व्यक्ति प्रभावपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अतः उन्होंने आध्यात्मिक दृष्टि से स्वयं को हज़रत असग़र गौंडवी के साथ जोड़ लिया और उनकी अनुकम्पा से अपने व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण किया।

धार्मिक विश्वास

जिगर एक धार्मिक घराने से सम्बन्ध रखते थे। उनके पिता, हज़रत मौलाना मुहम्मद सिद्दीक़ के माध्यम से क़ादरिया सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा में थे। वे हनफ़ी धर्म के अनुयायी थे और रोज़ा और नमाज़ के पाबन्द थे। जिगर भी सुन्नी मुसलमान थे और हनफ़ी विधि-विधान का पालन करते थे। काज़ी अब्दुल ग़नी मंगलौरी का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् उनके धार्मिक विश्वासों में दृढ़ता आ गयी थी। उन दिनों जब वे बहुत शराब पीने लगे थे, उनके धार्मिक विश्वासों में अस्थिरता आ गयी थी और वे भौतिकवाद तथा नास्तिकता की ओर प्रवृत्त हो गए थे। कुछ समय के लिए वे शिया मत से भी प्रभावित रहे, किंतु शीघ्र ही वे इन प्रभावों से मुक्त हो गए और अपने पैतृक विश्वास की ओर लौट आए। उनकी धार्मिक निष्ठा के उन्नयन में असग़र गौंडवी ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसी के साथ यह बात भी पूरे विश्वास से कही जा सकती है कि वे धार्मिक कट्टरता और संकीर्ण भावना से पूरी तरह मुक्त थे। वे सबके साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों में विश्वास रखते थे। वे किसी भी धर्म के अनुयायी की धार्मिक भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते थे। ऐसे कार्य को वे धर्म की मर्यादा के विरुद्ध मानते थे। प्रेम और स्नेह तथा अन्य धर्मों के प्रति आदर और सम्मान ही उनके अनुसार वास्तविक धर्म था। यही कारण है कि उनके मित्रों में हर धर्म और वर्ग के लोग सम्मिलित थे। वह उनमें कोई अन्तर नहीं करते थे और सबके साथ समान रूप से व्यवहार करते थे।

असग़र गौंडवी के साथ सम्बन्ध

जिगर की असग़र गौंडवी के साथ भेंट 1919 में हुई। यह समय जिगर के मानसिक द्वन्द्व और आत्मिक पीड़ा का था। उनके धार्मिक विचारों में अस्थिरता उत्पन्न हो गयी थी। सही मार्ग नहीं सूझ रहा था और न ही कोई ऐसा मार्गदर्शक उन्हें मिल रहा था, जो सही रास्ता दिखाए। यह उनका सौभाग्य ही था कि इस स्थिति में उनकी भेंट असग़र गौंडवी से हो गयी। वे सही अर्थों में उनके पथपदर्शक, परामर्शदाता और गुरु सिद्ध हुए। उन्हीं की सलाह पर जिगर काज़ी अब्दुल गनी मंगलौरी की शिष्य परम्परा में शामिल हुए। गौंडवी के संसर्ग से जिगर ने अपने जीवन को सँवारा और अपने विश्वासों में दृढ़ता उत्पन्न की। जिगर ने असग़र के साथ अपनी पहली भेंट का बयान निम्न शब्दों में किया है—

"सम्भव है तुम्हें मालूम न हो कि मैं विभिन्न धार्मिक विश्वासों के दौर से गुज़रता रहा हूँ। एक समय ऐसा था जब नास्तिकता भी मुझ पर हावी रही। शिया मत की ओर भी मेरा झुकाव रहा था। इन दिनों में लाहौर में चश्मे की एक फ़र्म में नौकर था, जिसके डायरेक्टरों में शेख़ अब्दुल क़ादिर भी थे। यह समय मेरे लिए दुःख और आध्यात्मिक पीडा का था। एक दिन मैं हज़रत असग़र गौंडवी के पास उनसे मिलने गया, जो एक सज्जन से वाद-विवाद कर रहे थे। इसमें मुझे इतनी रुचि हुई कि मैं दूर ही से इस वाद-विवाद को सुनने के लिए रुक गया। मैं इस प्रकार समीप ही खड़ा होकर सारी बहस सुनता रहा, वे मुझे देख न सके। विचित्र बात यह थी कि हज़रत असग़र समझा उसे रहे थे, किन्तु हर बात कानों के द्वारा मेरे दिल में उतरती जा रही थी। ऐसा भी समय आया जबकि मैंने उन शंकाओं पर विचार किया जो मेरे मन में थी और थोड़ी देर के बाद ही मुझे वहाँ से उत्तर मिल गया। वह समय मुझे याद है जब थोड़ी देर में ही हनफ़ी मत में मेरा विश्वास दृढ़ हो गया। जब हज़रत असग़र के पास से वह सज्जन चले गए तो मैंने चाहा कि मैं उनका अनुयायी होने की इच्छा प्रकट करूँ। मेरे मन में यह विचार आता था कि उन्होंने बातों-ही-बातों में मेरा ध्यान अपने तरीक़त[1] के गुरु की ओर आकृष्ट कर लिया और कहा तुम जो चाहते हो, वहाँ से प्राप्त होगा।"[2]

जिगर ने हज़रत असग़र के इस अहसान को कभी नहीं भुलाया, बल्कि समय-समय पर इसे प्रकट भी करते रहे। वे अपने एक घनिष्ठ मित्र शर्फ़ जैदी रामपुरी को एक पत्र में लिखते हैं—

"यदि मुझे असग़र साहब के माध्यम से मंगलौर की पवित्र भूमि की सेवकाई

---

1. सूफी साधना का एक सोपान
2. हुमायूँ (लाहौर) मार्च, 1951, पृ. 259

का गौरव प्राप्त न हो जाता, तो निश्चय ही मैं तो आत्मघात कर चुका होता, या अपने एक मित्र के कथनानुसार घर छोड़कर जंगलों की शोभा बढ़ाता। मेरी दीक्षा हज़रत असग़र गौंडवी के उपकार की ऋणी है और सही अर्थों में असग़र साहब का महान् व्यक्तित्व ही मेरी काव्य रचनाओं के दिशा-निर्देशन के लिए उत्तरदायी है।"[1]

जिगर के ऊपर असग़र का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे उनके हृदय व मस्तिष्क पर पूरी तरह छा गए और जिगर का जीवन ही उनके बिना अपूर्ण रहने लगा। वे जिगर के संरक्षक और आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक बन गए। मद्यपता और फक्कड़पन के ज़माने में भी असग़र के प्रति उनकी आस्था में कोई कमी नहीं आयी और असग़र शान्त भाव से उनको सद्मार्ग पर लाते रहे।

मदिरापान

जिगर ने 12-13 वर्ष की वय में ही शराब पीना शुरू कर दिया था। धीरे-धीरे इसमें वृद्धि होती गयी और फिर यह आदत इस सीमा तक बढ़ गयी कि वे हर समय नशे में धुत रहने लगे। कभी तो इतनी पी लिया करते थे कि उन्हें ख़ुद अपनी भी सुध नहीं रहती थी। असग़र गौंडवी ने कभी प्रत्यक्ष रूप से उन्हें शराब पीने से मना नहीं किया, फिर भी इतनी सलाह अवश्य दी कि उम्दा शराब पीओ, अच्छी संगत में पीओ और स्वयं ख़रीदकर पीओ। इस प्रकार उन्होंने परोक्ष रूप से जिगर को सद्मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया। यह असग़र की सद्-संगति का ही परिणाम था कि ऐसी अवस्था में भी, जब वे आपे में नहीं होते और पग-पग पर दूसरे लोग उन्हें सँभालते और सहारा देते, कोई भी ऐसा शब्द उनके मुख से नहीं निकला जो मर्यादा की सीमा से परे हो और न ही कोई ऐसी हरकत की, जिस पर बाद में उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ा हो।

मदिरापान का त्याग

जिगर शराब पीने को कभी अच्छा नहीं समझते थे। वे सदा मदिरापान पर लज्जित रहते थे और इससे छुटकारा पाने की कामना करते रहते थे तथा इसका सेवन न करनेवालों से भी दुआएं करने की प्रार्थना करते। बार-बार इसका परित्याग करने का प्रयत्न करते किन्तु सफल न होते। बहुधा कई-कई दिनों तक इसे मुंह न लगाते, किन्तु फिर जी मचलने लगता और "तौबा को तोड़-ताड़ के घबरा के पी" जाते। अन्ततः मित्रों की दुआएं रंग लायी और वह अपने प्रयत्नों में सफल हुए। अब की बार जो छोड़ी तो फिर कभी न पी और सदा के लिए इससे छुटकारा

---

1. जिगर के ख़तूत, सं. मुहम्मद इस्लाम, पृ. 159

पा लिया। यह उनकी इच्छा-शक्ति और दृढ़संकल्प का एक उत्तम उदाहरण है।

जिगर मदिरापान से कितने पराङ्मुख थे और इससे छुटकारा पाने की कितनी कामनाएँ करते थे, इसका अनुमान इस घटना से सहज ही लगाया जा सकता है। एक बार वे हजरत असग़र के यहाँ आए हुए थे। अचानक उन्होंने असग़र से बड़े दुःखी मन से पूछा कि असग़र साहब ! आख़िर परमात्मा मेरी विनती क्यों नहीं सुनता ? मैंने कितनी बार विनती की है, किन्तु मेरी शराब नहीं छूटती। असग़र ने उपदेश भरे स्वर में उत्तर दिया—इसका वास्तविक कारण यह है कि तुम दिल के एक कोने से विनती करते हो, पूरे मन से विनती करो तो इसके स्वीकार होने की आशा भी हो। प्रार्थना की विधि यह है कि सिर से पाँव तक साक्षात् विनय की प्रतिमा बन जाओ। अपूर्ण विनती कैसे स्वीकार होगी ? ज्ञात होता है कि जिगर पर इस उपदेश का अपेक्षित प्रभाव पड़ा और जब उन्होंने साक्षात् विनय की प्रतिमा बनकर परमात्मा से प्रार्थना की तो उसे स्वीकृति प्राप्त हुई और शराब ने हमेशा के लिए जिगर का पीछा छोड़ दिया।

विवाह

जिगर ने अपने जीवन में तीन विवाह किए। पहला विवाह उन्होंने अपनी इच्छा से 1915 या 1916 ई. में वहीदन बेगम से किया, जो बिजनौर की थीं, किन्तु रहती आगरे में थीं। वह वेश्या थी। जिगर उनसे बहुत प्रभावित थे और अत्यधिक प्रेम करते थे। यह साहचर्य अधिक दिनों तक नहीं रह सका। दो वर्ष बाद ही वहीदन बेगम का देहान्त हो गया। जिगर को उनके विछोह से गहरा आघात पहुँचा। उनके विरह में इनकी हालत और भी ख़राब हो गयी। इस ज़माने में उनके मदिरापान में और भी वृद्धि हो गयी और धीरे-धीरे वह पीने की सामान्य सीमा से बहुत आगे बढ़ गए। इसी काल में उनकी भेंट असग़र गौंडवी से हो गयी। उन्होंने जिगर की दशा सुधारने के लिए अपनी साली नसीर बेगम का विवाह उनसे करा दिया। यह घटना 1920 की है। जिगर उन्हें नसीम बेगम कहा करते थे। असग़र समझते थे कि इस विवाह के पश्चात् जिगर की दशा में सुधार आ जाएगा और वे शराब पीना बन्द कर देंगे। किन्तु उनके आचरण में कोई परिवर्तन नहीं आया। मदिरापान में अधिकता और उन्मत्तता उसी प्रकार बनी रही। घर से कई-कई महीने तक ग़ायब रहते और सूचना तक न भेजते और न ही ख़र्चों में कमी करते। यह स्थिति घरवालों के लिए बड़ी कष्टदायक थी। स्वयं असग़र भी चिन्तित रहते थे। जिगर के सुधरने की कोई आशा नहीं दीख पड़ रही थी। असग़र की पत्नी, नसीम बेगम की बड़ी बहन थी। इनसे असग़र की कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने नसीम के कष्टों को समाप्त करने और असग़र को निःसन्तान न रहने देने के उद्देश्य से अपूर्व त्याग का उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने पति को इस

बात के लिए राजी कर लिया कि वह उन्हें तलाक़ दे दें और उधर जिगर से नसीम को तलाक़ दिलाकर स्वयं नसीम से निकाह् कर लें। नसीम के भी कोई सन्तान नहीं थी। ऐसा ही हुआ। असग़र और जिगर दोनों ने अपनी-अपनी पत्नियों को तलाक़ दिया। फिर नसीम बेगम से असग़र ने निकाह् कर लिया। इस प्रकार नसीम बेगम के कष्टों का दौर समाप्त हो गया। परन्तु असग़र के भाग्य में सन्तान से वंचित रहना ही लिखा था। नसीम से भी असग़र को कोई सन्तान नहीं हुई।

नसीम बेगम से अलग होने के बाद जिगर नाम-मात्र के इस बन्धन से भी मुक्त हो गए। अब उन्हें केवल शराब और शायरी से ही काम रह गया। इस अवधि में अभाव और दारिद्र्य भी बढ़ता गया। प्रत्येक प्रकार के कष्टों ने उन्हें घेर लिया। इसी काल में कुछ समय के लिए जिगर उन्नाव गए। सौभाग्य से यहाँ उनका परिचय प्रसिद्ध कवि जगत् मोहनलाल 'रवाँ' से हो गया। वह जिगर के बड़े प्रशंसक और पारखी थे। उन्होंने जिगर को सांत्वना दी और उसकी हर प्रकार की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखा। उनके लिए शराब भी उपलब्ध कराते और वह भी उच्चकोटि की।

जिगर नसीम के दुःख को कभी दिल से न भुला सके। हर घड़ी उनके विछोह का आघात उन्हें दुःखी रखता। 1932 में जिगर भोपाल गए और कई महीने तक रहे। यहाँ उनके मित्र बहुत ध्यान रखते। सारी सुख-सुविधाएं उपलब्ध कराते और मनोरंजन की व्यवस्था करते। इस वातावरण में भी वह नसीम की याद को दिल से न भुला सके। अतः कहते हैं—

भोपाल गरचे[1] ख़ुल्द[2] बद अमाँ है, ए जिगर,
दिल क्या शगुफ़्ता[3] हो कि नसीम जिगर नहीं।

1936 में असग़र गौंडवी का देहान्त हो गया। उन्होंने नसीम बेगम को वसीयत की थी कि यदि जिगर शराब छोड़ दें तो उनसे निकाह् कर लेना। अतएव असग़र के देहान्त के बाद जब जिगर ने नसीम बेगम से फिर विवाह की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने यही शर्त उनके सामने रख दी। जिगर बहुत परेशान हुए किन्तु कुछ ही समय के बाद वह शराब छोड़ने में सफल हो गए। जब नसीम को पूर्णतः विश्वास हो गया कि शराब के छोड़ देने का उनका यह निश्चय अटल है और पहले के निश्चयों की तरह भंग होनेवाला नहीं है तो उन्होंने जिगर के अनुरोध को स्वीकार करके उनसे विवाह कर लिया। इसके बाद जिगर के जीवन का स्वर्णिम-काल आरम्भ हुआ। उनके जीवन में शिष्टता आ गयी, फक्कड़पन दूर हो गया

---

1. यद्यपि
2. स्वर्ग
3. खिलना

और फिर से उनका जीवन सुखी रहने लगा। अब, मानो उनके जीवन में बहार आ गयी हो। उनकी ख्याति भी उच्च शिखर तक पहुँच गयी। निर्धनता और अभाव की स्थिति भी दूर हो गयी। नसीम बेगम से उनके सम्बन्ध अन्त तक बहुत मधुर रहे। जिगर हर प्रकार से उन्हें सान्त्वना देते रहे और विगत की कटुता का परिहार करने का प्रयत्न करते रहे। अब उन्होंने गौंडा को अपना स्थायी निवास बना लिया। अब भी उन्हें बहुधा मुशायरों में या अन्य कारणों से घर से बाहर जाना होता और कई-कई मास तक बाहर रहना होता। किन्तु वे लौटकर गौंडा ही आते। लौटते समय मित्रों के लिए उपहार लाते। बेगम के लिए भी आभूषण और मूल्यवान् वस्त्र आदि लाते। मित्रगण उन्हें समझाते और ऐसा करने से रोकते, किन्तु जिगर अपने मित्रों से बड़ा स्नेह रखते थे। वे इन 'शीशों' को ठेस पहुँचाना सहन नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार नसीम बेगम के लिए भी कहा करते थे कि विगत में मेरी ओर से इन्हें जो कष्ट पहुँचे हैं और इन्होंने मेरे लिए जो कठिनाइयाँ सहन की हैं उनका अनुमान लगाना कठिन है। मैं हूँ कि अब इस भार को कम कर दूँ। इस प्रकार वे उनसे सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने में सफल हुए। इस अवधि में इन दोनों के बीच किसी भी अप्रिय घटना की सूचना नहीं मिलती।

चरित्र

जिगर ऐसे व्यक्ति थे जो किसी के भी दिल को दुखाना नहीं चाहते थे। वे अत्यन्त सहृदय, मिलनसार और ढंग के व्यक्ति थे। जिस व्यक्ति को एक बार अपना लेते, सदा उसका आदर करते और हर प्रकार से उसे तसल्ली देते। देखने में उनकी शक्ल-सूरत आकर्षक नहीं थी। रंग काफ़ी काला था। आँखें छोटी और क़द दरम्याना था। बातचीत के समय आगे के दाँत दिखायी देने लगते थे। किन्तु उनका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल और आकर्षक था। इसका प्रभाव उनके रंग-रूप पर भी पड़ा था। इसी कारण उनके चरित्र और आकृति दोनों में अद्‌भुत आकर्षण पैदा हो गया था। पहली ही मुलाक़ात में लोग उनसे प्रभावित हो जाते थे। उनके चरित्र और स्वाभाविक गुणों की जो छाप पहली बार पड़ती वह बाद की मुलाक़ातों में और भी गहरी होती जाती। कभी ऐसा नहीं हुआ कि मिलनेवालों पर प्रथम परि-चय में जो प्रभाव पड़ा था, उससे उन्हें निराशा हुई हो या उस पर पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतीत हुई हो। वे एक ही मुलाक़ात में लोगों पर ऐसा जादू डालते कि वे पुनः उनसे मिलने को उत्सुक रहते।

जिगर बड़े स्वाभिमानी और आत्म सन्तोषी व्यक्ति थे। इन दोनों विशेषताओं ने उनके व्यक्तित्व को ऊँचा उठा दिया था। उन्होंने बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयों में भी अपने स्वाभिमान को आँच न आने दी। वे न तो स्वयं चापलूसी करते थे और न ही किसी की चापलूसी पसन्द करते थे। दिल के बहुत साफ़ और खरे थे। इसीलिए

वे सत्तासम्पन्न और ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों से दूर ही रहना पसन्द करते थे। बेफ़िकरी उनके स्वभाव का दूसरा अंग था। इससे उनके स्वाभिमान को बल मिलता था। उनके जीवन की बहुत-सी घटनाएँ ऐसी हैं, जिनसे उनके स्वाभिमान और निश्चिन्त स्वभाव का परिचय मिलता है। एक पत्र में वे श्री विद्याशंकर आई. सी. एस. (बम्बई) को अपनी आदत और स्वभाव के बारे में लिखते हैं—

"चापलूसी मेरा तरीक़ा नहीं है। जहाँ कहीं सच्चा प्रेम और स्नेह, सज्जनता और मानवता का अनुभव कर लेता हूँ, मैं उसी का हो जाता हूँ। पहली बात तो यह है कि कुछ कहने या बताने की नौबत ही नहीं आने पाती और यदि आ भी जाती है तो बहुत संक्षिप्त और स्वाभाविक रूप में ही व्यक्त कर देता हूँ। साधारणत: लोग अपने हितों, स्वार्थों और उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उन्हें बढ़ाते रहते हैं और उनसे लाभ उठाते रहते हैं। मैं सामान्य लोगों से कुछ भिन्न प्रकार का हूँ। मैं इस पद्धति को बिलकुल भी पसन्द नहीं करता। परमात्मा की दया है, अपने निजी लाभ के लिए मैंने अपने घनिष्ठतम मित्रों के अलावा कभी किसी को कष्ट नहीं दिया, आत्म सम्मान का जीवन व्यतीत किया और अपने इस व्यवहार पर मुझे गर्व भी है।"[1]

अपने शराबीपन और अलमस्ती के दिनों में भी जिगर अपने इस व्यवहार पर दृढ़ता से अडिग रहे। सिद्दीक़ हसन साहब आई. सी. एस. से जिगर के बड़े गहरे और सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे। सिद्दीक़ हसन साहब जिगर के प्रशंसकों में से थे। उन्होंने जिगर को बड़े निकट से देखा-परखा था। उनके आत्म-सम्मान की एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

'आतिशे गुल'[2] का प्रकाशन हो चुका था। इसकी प्रतियाँ मेरे पास रखी हुई थी। मैंने दो-एक मित्रों के परामर्श से निश्चय किया कि कोई पचास प्रतियों पर जिगर अपने हस्ताक्षर कर दें, ताकि ये पुस्तकें अधिक मूल्य पर बिक सकें। जिगर के साथ मेरे ऐसे सम्बन्ध थे कि मैं काफ़ी धृष्टता कर सकने की स्थिति में था। अत: एक दिन तीसरे पहर जब मैंने देखा कि जिगर अच्छे मूड में है तो मैंने अत्यन्त अनौपचारिक रूप में उनसे कहा कि कुछ पुस्तकों पर हस्ताक्षर कर दीजिए। कहने लगे, क्या कीजिएगा? मैंने कहा—करूँगा क्या? जहाँ और पुस्तकें बिकेंगी इन्हें भी बेच दूँगा और सम्भवत: लेखक के हस्ताक्षर के कारण इनका मूल्य अच्छा आ जाए। यह सुनकर वे मुस्करा दिए। कहने लगे—मैं अपने हस्ताक्षर बेचूं? जी नहीं, मैंने भरसक आग्रह किया, किन्तु जिगर को इसके लिए तैयार नहीं कर सका।"[3]

---

1. जिगर के ख़तूत, सं. मुहम्मद इस्लाम, पृ. 229
2. जिगर की एक पुस्तक का नाम
3. फरोग़े उर्दू (लखनऊ), जिगर अंक, मार्च-अप्रैल, 1961, पृ. 102-121

जिगर की मित्र-मण्डली का आकार बड़ा व्यापक था। एक बार जो इसमें प्रविष्ट हो जाता, उसके लिए इससे निकलना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता। वे अपने मित्रों का बड़ा ध्यान रखते थे। हर प्रकार से उन्हें तसल्ली देते थे। एक बार जिसे उनसे मिलने का अवसर मिल जाता, सदा के लिए वह उनका हो जाता। वे भारत और पाकिस्तान दोनों ही जगह बड़े लोकप्रिय थे। उच्च वर्ग से लेकर सामान्य वर्ग तक के दोनों देशों के लोग इनका बड़ा सम्मान करते और इनका ध्यान रखते थे। जिगर किसी पर अपना बड़प्पन या श्रेष्ठता नहीं जताते थे। हर व्यक्ति से उसकी आयु और पद की गरिमा का ध्यान रखते हुए मिलते। उससे अनौपचारिकता का व्यवहार करते। यही कारण है कि उनकी मित्रों में हर विचारधारा और हर वर्ग के लोग शामिल थे और सभी समान रूप से उनकी संगति का लाभ उठाते थे। इनमें धनी, निर्धन, राजा, महाराजा, नवाब, उच्च सरकारी अधिकारी और शासक वर्ग के लोग—सभी शामिल थे। जिगर सबको समान रूप से प्रेम करते थे।

अंजुमन-उल-कुहला[1]

जिगर ने एक बार अपने अन्तरंग मित्रों के मनोरंजन और हास-परिहास के उद्देश्य से एक समिति का गठन किया, जिसका नाम 'अंजुमन-उल-कुहला' रखा। प्रत्येक निठल्ला व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता था। जो व्यक्ति जितना अधिक सुस्त और अहदी सिद्ध होता, उतना ही बड़ा पद उसे दिया जाता। इसका विवरण इस प्रकार है कि 1932 में जिगर भोपाल गए और कई मास तक अपने एक घनिष्ठ मित्र और अन्तरंग साथी महमूद अली खाँ जामई के निवास-स्थान पर रहे। यहाँ हर समय लोग जिगर से मिलने आते थे। इनमें से कुछ गहरे मित्रों ने यह निश्चय किया कि मनोरंजन और हास-परिहास द्वारा समय व्यतीत करने के लिए एक अंजुमन[2] बना ली जाए और उसके सहारे स्वच्छन्दता और अनौपचारिकता के मुक्त वातावरण में समय व्यतीत किया जाए। अतः तत्काल इस विचार को कार्यरूप में परिणत किया गया और एक समिति का गठन किया गया, जिसका मूल उद्देश्य निठल्लेपन को बढ़ावा देना और उसका प्रचार करना निश्चित हुआ। तदनुसार इसका नाम 'अंजुमन-उल-कुहला' रखा गया। इसका मुख्य कार्यालय वह कमरा था, जिसमें जिगर साहब रहते थे। इस कमरे का नाम 'दारूल कुहला' तय पाया गया। इसके उद्देश्यों की व्याख्या इन शब्दों में की गयी थी—

आजकल दुनिया कलह और संघर्ष का क्षेत्र बनी हुई है। जिधर देखो रक्त-

---

1. काहिलों की सभा
2. समिति

पात, आतंक और विनाश का बोलबाला है। यदि इसके कारणों पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाए, तो पता चलेगा कि यह सब गति की तीव्रता का परिणाम है। आरम्भ में मनुष्य पैदल चला करता था। फिर, चलने में असमर्थ लोगों के लिए सवारी का प्रचलन हुआ। इसके बाद इसका अनुचित प्रयोग होने लगा। पहले बैल-गाड़ी का चलन हुआ। उसका स्थान घोड़ागाड़ी ने ले लिया। फिर तो भाप और बिजली से चलनेवाली सवारियाँ ताबड़तोड़ मैदान में आ गयीं। बाइसिकल ने मोटर-कार का रूप ले लिया। रेलें दौड़ने लगीं। समुद्र के सीने को चीरते हुए जहाज़ और वायु के पंखों पर उड़ते हुए वायुयान घूमने लगे। यहाँ तक की अब तो बड़ी सरलता से यह सम्भव हो गया है कि प्रातःकाल का नाश्ता हम दिल्ली में करें और मध्याह्न का भोजन हम तेहरान में लें। पुराने समय में यदि कोई शत्रु आक्रमण करता था तो, उसे गन्तव्य तक पहुँचते-पहुँचते कम-से-कम एक माह अवश्य लग जाता था। इस बीच जिस देश पर आक्रमण होनेवाला होता था, उसे तैयारी का अवसर मिल जाता था। किन्तु आज तो यह स्थिति है कि प्रातः 5 बजे अल्टीमेटम दिया और 8 बजे उस देश पर बम वर्षा आरम्भ कर दी। यह सब तीव्र गति का चमत्कार है। अतः शान्तिप्रिय लोगों को इस पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने के लिए गतिहीनता का प्रचार करना अर्थात् 'सुस्ती' को बढ़ावा देना चाहिए। इसकी बैठक प्रतिदिन 9 बजे रात्रि से प्रातः 3 बजे तक होगी। इस समिति के निम्नलिखित चार पदाधिकारी थे—

1. सदर[1] उल-कुहला—जिगर मुरादाबादी
2. नायब सदर[2]—हसरत लखनवी
3. नाज़िम[3] उल-कुहला—महमूद अली खाँ जामई
4. नक़ीब[4] उल-कुहला (Sergeant at Arms) ग़ुलाम हुसैन खाँ 'अज़्म' बनारसी।"

जिगर को अध्यक्ष के गरिमापूर्ण पद पर इसलिए आसीन नहीं किया गया था कि वह अपने गुणों और काव्य-प्रतिभा के कारण सब में श्रेष्ठ थे बल्कि उनका चयन इसलिए किया गया था कि वह सुस्ती की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में सफल हुए थे। इसलिए ग़ुलाम हुसैन को भारी-भरकम शरीर, सिपाहियों जैसे रोबीले क़द-काठी और कड़कदार आवाज़ के कारण अंजुमन उल-कुहला का चौबदार बनाया गया था। इनका काम समिति के मामलों और अध्यक्ष महोदय के आदेशों की उच्च स्वर

---

1. अध्यक्ष
2. उपाध्यक्ष
3. मन्त्री
4. चोबदार

में घोषणा करके समिति के सदस्यों को सूचित करना था।

इनके अतिरिक्त लगभग 21 सदस्यों की एक कार्यकारिणी समिति थी। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति को उसकी निजी विशेषताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न उपाधियों से विभूषित किया गया था। जैसे एक सज्जन छोटे क़द के थे। उन्हें 'फ़िलत : उल-कुहला'[1] की उपाधि दी गयी थी। एक साहब लम्बे क़द के थे, उनको 'तवील-उल-कुहला'[2] की उपाधि दी गयी थी। एक सज्जन शक्कर के अधिक शौक़ीन थे, उनको 'क़न्द उल-कुहला'[3] और एक व्यक्ति बहुत भारी शरीर के थे, उनको 'दबीज उल-कुहला'[4] की उपाधि से विभूषित किया गया था। चूँकि पूरी उपाधि को मुख से उच्चारित करना सुस्ती की मूल भावना के विरुद्ध था। इसलिए उसके केवल आधे भाग का ही उच्चारण किया जाता था, जैसे सदरूल, दबीज़ुल, नक़ीबुल कन्दुल आदि। प्रत्येक सदस्य के लिए यह आवश्यक था कि वह प्रतिदिन बैठक में सम्मिलित हो। अत. भारी-से-भारी और मूसलाधार वर्षा में भी लोग इसमें भाग लेने के लिए चले आते। इस पूरे गिरोह में सबसे अधिक आकर्षक और केन्द्रीय व्यक्तित्व जिगर का था। अत: उनके भोपाल से चले जाने के बाद इस समिति की गतिविधियाँ समाप्त हो गयीं।

उदारता

जिगर बड़े उदार, चिन्ता-मुक्त और ख़र्चीले व्यक्ति थे। रुपया बचाना और उसे जोड़कर रखना उनको न आता था। दूसरों पर ख़र्च करने में वे कभी विलम्ब नहीं करते थे। अपनी आय का अधिकांश भाग वे मित्रों और शिष्यों पर व्यय कर दिया करते थे। निर्धनों और जरूरतमन्दों की दिल खोलकर सहायता करते थे। कितने ही अनाथों और विधवाओं की जिम्मेदारी वे सँभालते थे, किन्तु इन कुछ विशेष लोगों के अलावा किसी को ख़बर तक न होती थी। वह जब भी अपने निवास-स्थान से बाहर जाते, वापसी में मित्रों के लिए उपहार अवश्य लाते। बहुधा मुशायरों में पाकिस्तान भी जाते। वहाँ भी उनकी बड़ी आव-भगत होती। बड़ी-बड़ी धन-राशियाँ पेश की जाती। इस प्रकार बे-हिसाब आय होती, किन्तु वह सब वहीं व्यय कर देते।

उनकी उदाहरता की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इनमें से एक को यहाँ उद्धृत कर देना पर्याप्त है—

---

1. काहिलों में छोटे क़द का
2. काहिलों में लम्बे क़द का
3. काहिलों में मीठा
4. काहिलों में भारी क़द का

एक बार कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। जिगर साहब नशे में धुत पड़े थे। उन्हें अपने तन-बदन की सुध नहीं थी। इसी समय एक भिखारी दर्द-भरे स्वर में गिड़-गिड़ाता हुआ उधर से निकला। जिगर उसकी आवाज़ सुनकर चौंक पड़े। इस भिखारी की आवाज़ से उसकी दिशा का अनुमान लगाया और उसी ओर चल पड़े। काफ़ी दूर जाकर उसे पकड़ पाए। वहीं उन्होंने अपने वस्त्र उतारकर उस भिखारी को पहना दिए और स्वयं नंगे शरीर वापस आ गए। जब मित्रों ने उनसे पूछा कि उन्होंने अपने कपड़ों का क्या किया, तो उन्होंने उत्तर दिया कि उस भिखारी को दे आया, जो अभी इधर से गुज़रा था। मैंने देखा कि वह सर्दी से ठिठुर रहा है और कोई भी उसकी आवाज़ पर ध्यान नहीं देता। विवश होकर मुझे अपने वस्त्र उसे देने पड़े। आख़िर, वह भी मनुष्य ही है। खेद है कि आप लोगों में से किसी ने उसकी चिन्ता नहीं की और सब-के-सब उसकी आवाज़ चुपचाप सुनते रहे।[1]

महमूद अलीखाँ जामई का कथन है—

"जिगर साहब की गिनती खाते-पीते लोगों में नहीं है। काफ़ी समय बड़ी तंगी में गुज़रा। अब भी व्यय, आय से अधिक है। किन्तु उन्होंने अपनी अभाव ग्रस्तता को किसी के सामने प्रकट नहीं किया। अतिथि का आदर-सत्कार इस प्रकार करते जैसे उनके घर में सुख-सम्पदा की वर्षा हो रही हो। उसके अतिथि-सत्कार में कोई कमी न छोड़ते। वे कपड़े अच्छे पहनते हैं। क़ीमती सामान रखते हैं, जिसे सदा कोई-न-कोई माँग लेता है या चुरा लेता है, नहीं तो वे स्वयं खो आते हैं।"[2]

जिगर अपने मित्रों से बड़ा स्नेह रखते थे। उनकी तनिक-सी चिन्ता भी उनसे देखी नहीं जाती थी। वे हर-समय हर प्रकार से उनकी सहायता करने को तैयार थे। जिन लोगों से उनको कष्ट पहुँचा, उनके साथ भी वे भलाई करते थे। एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। एक बार वे लाहौर में अपने कुछ मित्रों के साथ ताँगे में बैठे हुए जा रहे थे। रास्ते में एक सज्जन ने उनकी जेब से पर्स ग़ायब कर दिया, जिसमें काफ़ी धनराशि थी। जिगर ने उसे पर्स निकालते हुए देख लिया, किन्तु कुछ नहीं कहा और अनदेखी कर गए। जब ताँगे से उतरे तो सटपटाये स्वर में कहने लगे, अरे! मेरा पर्स कहीं रह गया। आप सज्जनों में से किसी के पास पैसे हों, तो उधार-स्वरूप दे दें। मै किराये का भुगतान कर दूँ। उनमें से एक सज्जन ने पर्स निकालते हुए देख लिया था। वह कुछ कहना ही चाहते थे कि जिगर भाँप गए कि ये भाँडा फोड़नेवाले हैं। तुरन्त उस सज्जन को अलग ले गए और कहने लगे कि ख़बरदार!

---

1. मुहम्मद इस्लाम : जिगर मुरादाबादी—हयात और शायरी, पृ. 157
2. महमूद अलीखाँ जामई—तज़किर-ए-जिगर, पृ. 78

इस रहस्य को प्रकट न कीजिए। नहीं तो आत्मघात कर लूंगा। जिगर के स्वभाव में धोखाधड़ी, बनावट या दिखावे का कोई स्थान नहीं था। वह एक सीधे-साधे सच्चे इन्सान और प्रेम तथा स्नेह की साक्षात् मूर्ति थे। उनका यह शे'र मात्र कविजन्य डींग नहीं, अपितु, उनके स्वभाव की सही और सच्ची तस्वीर पेश करता है—

जिगर की है जिन्दगी मुहब्बत,
नहीं है उसको किसी से नफ़रत।
जिगर के दिल में हैं, सबकी इज़्ज़त,
जिगर है, यारों का यार अब भी।

यह शे'र जिगर के स्वभाव की सच्ची अभिव्यक्ति है। उनके मित्रों में एक सज्जन थे, 'वहशी'। एक बार बेसुधी की अवस्था में जिगर का उनसे किसी बात पर विवाद हो गया और मामले का अन्त दोनों ओर से भारी कटुता के रूप में हुआ। किन्तु जब जिगर को होश आया तो उन्हें इस अशोभनीय घटना पर बड़ा खेद हुआ और तुरन्त पत्र लिखकर स्थिति स्पष्ट कर लेनी चाही। वे लिखते हैं—

"माई डियर वहशी, सस्नेह प्रणाम ! क्या पागलपन की दशा में कोई क़ानून वैध समझा जा सकता है ? सम्भवतः नहीं। मैं तो वास्तव में नशे की स्थिति में था। किन्तु बताइए कि आपको क्या हो गया था ? फिर भी, मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं। पहले भी एक प्रकार का विचार अवश्य था, किन्तु मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इस विचार में प्रतिशोध की भावना कदापि नहीं थी। कुछ भी हो, विगत इसलिए होता है कि हम उसे भूल जाएँ। मैं आपको ईमानदारी से विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे न केवल यह कि उसको मैंने ध्यान से निकाल दिया बल्कि अपनी कार्य-प्रणाली पर हार्दिक खेद भी है।

"मेरे अन्तःकरण में एक विशेष भावना सदैव कार्यशील रहती है और वह यह कि यदि मेरे किसी मित्र या अन्य व्यक्ति द्वारा मेरे विरुद्ध किसी प्रकार की कोई दुर्भावना दिखायी देती है, तो केवल यह समझ लेने पर कि इसके बारे में मेरे मन में कोई बुरी भावना उत्पन्न हो गयी है, तुरन्त क्षमा कर देता हूँ और फिर नये सिरे से जीवन का आरम्भ उसी प्रेम और स्नेह के साथ करता हूँ, जो पहले विद्यमान था। निश्चय ही मित्रगण वैज्ञानिक दृष्टि से इस तथ्य से परिचित होंगे कि क्रोध क्या होता है। मेरे लिए क्रोध भी एक दया-दृष्टि ही है, यदि इसके औचित्य और इसकी वास्तविकता को समझ लिया जाए कि यह समस्या खुद किसी प्रकार नाज़ुक है। मैं आपके विवेक पर छोड़ता हूँ और अन्त में केवल इतना कहकर आपके पत्र की प्रतीक्षा में हूँ कि हमें एक-दूसरे को क्षमा करते रहना चाहिए। ऐसा न हो कि परमात्मा हमें क्षमा न करे।"[1]

---

1. जिगर के खतूत —सं. मुहम्मद इस्लाम, पृ. 232-233

विनोद प्रियता

जिगर बड़े हँसमुख और प्रसन्नचित्त व्यक्ति थे। बड़ी-से-बड़ी कठिनाई में भी उनके विनोदी स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आता था। अनौपचारिक गोष्ठियों में वे चुटकुलों की फुलझड़ियाँ लगाते रहते थे। इसीलिए वे सदा गोष्ठियों के प्राण और उनकी शोभा बने रहते। दूसरों पर व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ करते, किन्तु इनमें किसी की निन्दा नहीं होती थी। वे मनुष्य के सम्मान के पक्षधर थे। उनके बहुत-से चुटकुले प्रसिद्ध हैं। किन्तु इनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जिसमें जिगर अपने स्तर से नीचे गिरे हों या मर्यादा की सीमाओं का अतिक्रमण कर गए हों। इस मामले में वे बिरले ही थे।

जोश मलीहाबादी के साथ जिगर के बड़े घनिष्ठ और अनौपचारिक सम्बन्ध थे। जोश के भौतिकवाद और धर्मविमुखता से सभी परिचित है। इस बहाव में आकर वे धर्मपरायण लोगों पर कड़े-से-कड़ा व्यंग्य कर जाते थे। इसके विरुद्ध जिगर मानसिक रूप में सदा धर्मनिष्ठ व्यक्ति रहे। मदिरापान के निकृष्ट काल में भी उन्होंने धर्म का साथ नहीं छोड़ा। जोश बहुधा उन पर कटाक्ष किया करते थे। जिसका नहले पर दहला उत्तर वे दे दिया करते थे। एक बार जोश के साथ ताँगे पर बैठकर जिगर कहीं जा रहे थे। रास्ते में उनके मुख से सहसा 'या अल्लाह' की ध्वनि निकली। जोश को उनके मुख से यह ध्वनि सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। तुरन्त बोले, "जिगर साहब आपने मुझे क्यों पुकारा?" जिगर को यह बात अच्छी न लगी। तत्काल बोले, "अरे यह शैतान कहाँ से बोल उठा?" मैं तो अपने रब को याद कर रहा था।"

एक बार आज़ाद होटल, दिल्ली में एक विशेष मुशायरे का आयोजन था। जिगर और जोश भी इसमें सम्मिलित थे। जिगर ने जैसे ही ग़ज़ल पढ़नी आरम्भ की, जोश ने उनका मज़ाक बनाना शुरू कर दिया और इस प्रकार कि एक शे'र पर बारीक आवाज में, 'उई' कहा और दूसरे शे'र पर 'उई अल्लाह' और तीसरे शे'र पर स्त्रियोचित स्वर में 'अल्लाह, मैं मर गयी'। वास्तव में यह व्यंग्य था। ग़ज़ल की नारी सुलभ शैली पर। जिगर पहले तो सहन करते रहे, किन्तु जब जोश शान्त ही न हुए तो विवश होकर जोश की ओर मुड़े और मुस्कराकर कहा 'माशा-ए-अल्लाह'[1] खूब तरक़्क़ी की है। यह जोश की प्रगतिवादी विचारधारा की ओर भी संकेत था। जोश यह सुनकर बड़े लज्जित हुए और पूरी गोष्ठी हँसी में डूब गयी।

उर्दू के प्रसिद्ध शोधकर्त्ता और साहित्यकार श्री मालिकराम के भी जिगर से

---

1. क्या कहना

बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। उन्होंने भी जिगर की एक बड़ी मज़ेदार घटना का उल्लेख किया है। इसमें वह स्वयं भी सम्मिलित थे। वे कहते हैं—

"एक दिन मैं शाम के समय पीने बैठे और थोड़ी-थोड़ी करके लगभग आधी बोतल पी गए। आधी रात के बाद कहने लगे, चलो जोश के यहाँ चलें (जो वहीं करोल बाग़ में थोड़ी दूरी पर रहते थे)। हमने बहुत कहा कि वे सो चुके होंगे। अब इस समय इतनी रात गए उन्हें तंग करना ठीक नहीं होगा। किन्तु उन्होंने किसी की एक न सुनी, बल्कि हमारे कहने पर बिगड़ गए। अन्ततः सबने भलाई इसी में देखी कि जिस प्रकार ये कहते हैं उसी प्रकार किया जाए। अतः आगे-आगे जिगर, उन्हें सहारा देने को महमूद साहब और उनके पीछे हम छह-सात व्यक्ति एक जुलूस के रूप में चल दिए। सर्दियों की ढलती रात और उस ज़माने का करोल बाग़। आप अनुमान लगा सकते हैं कि कैसा भयावह वातावरण होगा! यह तो कुशल रही कि कोई पुलिस का सिपाही रास्ते में नहीं मिला। नहीं तो वह सोचता कि ये मुस्टण्डे शराब पीकर कहीं वारदात को जा रहे हैं या कम-से-कम आवारागर्द ज़रूर हैं और हमें जोश के मकान की बजाए थाने पहुँचा देता। अब एक चुटकुलेदार बात हुई। जिगर साहब कुछ क़दम चले और सड़क के बीचों-बीच खड़े होकर भाषण देना शुरू किया। इस पर कुत्तों और सूअरों ने (जिनकी उस जमाने में यहाँ बड़ी बहुतायत थी) इधर-उधर से निकलकर भौंकना, चीख़ना और भागना आरम्भ कर दिया। इस पर हम उन्हें किसी-न-किसी बहाने से आगे चलने को तैयार करते। अन्ततः किसी तरह ईश्वर की दया से वह तीन-चार सौ ग़ज़ की दूरी कोई आध-पौना घण्टे में पूरी हुई और हम लदे-फँदे जोश के मकान के बाहरी बरामदे में पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही जिगर ने जोर से दरवाज़ा खटखटाया। अन्दर से बड़बड़ाती आवाज आयी, "कौन ?" उन्होंने उत्तर दिया, "जिगर, 'कौन ?" "अरे, एक बार जो कहा है, जिगर, दरवाज़ा खोलो"; "भाई हम सो रहे हैं, सवेरे आ जाना, हम सो रहे हैं ?" "आए बड़े सोनेवाले ! अरे, हम सर्दी में यहाँ बाहर खड़े हैं और तुम सोए पड़े हो। जल्दी दरवाजा खोलो। यह महमूद भी हमारे साथ है।" इस पर जोश बेचारे चाहते न चाहते भी विवश होकर उठे और दरवाजा खोल दिया। उन्होंने अगले दिन मुझसे कहा कि मैं दरवाज़ा यूँ थोड़े ही खोलनेवाला था। लेकिन जब जिगर ने महमूद का नाम लिया तो मैंने विचार किया ज़रूर कोई घटना हो गयी है, वर्ना महमूद यूँ रात के समय बिलकुल न आते। यह इसलिए कि महमूद साहब पीते नहीं थे और जोश साहब को मालूम था कि वे गम्भीर आदमी हैं। दरवाज़े का खुलना था कि जिगर साहब लपककर कमरे में घुसे और ऊपर की गर्म चादर फेंक, झट से जोश के लिहाफ़ में घुस गए, जैसे वे घर से इसी तलाश में यहाँ तक आए हों और कहने लगे, महमूद अब काफ़ी देर हो चुकी है। मैं यहीं सोऊँगा। आप

तशरीफ़ ले जाइए। मैं सुबह नाश्ते के बाद आऊँगा। अच्छा, खुदा हाफिज़[1]। जोश बेचारे बड़े अचम्भे और परेशानी में कि यह बेइलाज़ मुसीबत कहाँ से आ पड़ी? वे कहते ही रहे, "नहीं, जिगर साहब, आप जाइए, महमूद साहब के साथ।" लेकिन वे तो टस-से-मस न हुए। इधर हम सबके हँसी के मारे पेट में बल पड़ गए। अन्त में हमने दोनों मित्रों को आपस में घुल-मिलकर बातें करने के लिए उनसे विदा ली और वापस चले गए।"[2]

जिगर उर्दू ग़ज़ल को प्रेम की भावना की उचित अभिव्यक्ति का माध्यम मानते थे। इसमें धार्मिक उपदेशों को पसन्द नहीं करते थे। इस सम्बन्ध में महमूद अली खाँ जामई ने एक बड़ी रोचक घटना का उल्लेख किया है। लिखते हैं—

"एक शायर जिगर साहब के विशेष मिलनेवालों में थे और अच्छी शायरी करते थे। एक बार जिगर साहब खूब पिये हुए लेटे थे। वे महोदय भी पास बैठे थे। जिगर साहब ने उनसे अनुरोध किया कि कुछ शे'र सुनाओ। उन्होंने पढ़ना आरम्भ किया। एक शे'र पर जिगर साहब एकदम उठ बैठे। वे बड़ी आस्था के साथ पढ़ने लगे। "अशहदान ला इलाह इल लिल्लाह"[3]। फिर पलटकर उनसे बिफ़रे हुए स्वर में कहने लगे। "जाओ, इस शे'र को शुक्रवार को खुत्बे[4] में शामिल करो।" फिर बड़बड़ाते हुए पीठ मोड़कर यह कहते हुए लेट गए कि लोगों को प्रेम करना ही होता, तो ग़ज़ल कहना क्या ज़रूरी था।[5]

देश-भक्ति

जिगर पक्के देशभक्त थे। भारत की निन्दा वह किसी भी दशा में सहन नहीं करते थे। भारत की स्वतन्त्रता से पहले वह स्वतन्त्रता-आन्दोलन के समर्थकों में थे। यद्यपि उन्होंने सक्रिय रूप से इसमें कोई भाग नहीं लिया, किन्तु वे रहे इसके समर्थक और प्रत्येक सच्चे भारतीय की भाँति विदेशी सत्ता के विरोधी। यही कारण है कि भारत के राष्ट्रीय नेताओं से उनके गहरे सम्बन्ध थे और ये लोग जिगर को बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। पं. जवाहरलाल नेहरू, डॉ. सम्पूर्णानन्द और डॉ. ज़ाकिर हुसैन जैसे नेता इनका बड़ा सम्मान करते थे। स्वतन्त्रता के बाद जिगर ने शासन की कुछ बातों से असहमति व्यक्त की और उस पर टीका-टिप्पणी भी की, जिसे उनके ईर्ष्यालुओं और विरोधियों ने बहुत उछाला और उन्हें देशद्रोही

---

1. परमात्मा रक्षा करे
2. मालिक राम—वह सूरतें इलाही, पृ. 176-177
3. मैं साक्ष्य देता हूँ कि ईश्वर एक है।
4. उपदेश
5. महमूद अलीखाँ जामई—तज़किर-ए-जिगर, पृ. 92

कहना आरम्भ कर दिया। किन्तु समझदार और न्यायप्रिय लोग जानते थे कि जो कुछ वह कह रहे हैं वह सद्भावना के रूप में कह रहे हैं। उनका मन्तव्य विरोधी और शत्रुतापूर्ण नहीं है, बल्कि परामर्शात्मक और स्नेहात्मक है। इस प्रकार की बातें वही व्यक्ति कह सकता है जिसके हृदय में देशप्रेम कूट-कूटकर भरा हो। इसी-लिए शासक वर्ग ने जिगर के विरोधियों की बातों पर कभी ध्यान नहीं दिया, बल्कि हर प्रकार से उनका सम्मान करते रहे। 1958 में उनको साहित्य अकादेमी का पुरस्कार दिया गया, जो उस समय देश का सबसे बड़ा साहित्यिक पुरस्कार था। यह पुरस्कार उन्हें उनके अन्तिम संकलन 'आतिशे गुल' पर दिया गया था, जिसमें विरोधियों के अनुसार 'देशद्रोही' कविताएँ भी सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश सरकार ने उनकी शैक्षिक एवं साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में उनकी मासिक वृत्ति भी नियत की थी और वह भी इस शोभनीय ढंग से कि इसके लिए जिगर को आवेदन भी नहीं करना पड़ा, बल्कि सरकार ने स्वयं ही इसका प्रस्ताव किया था। उनके देहान्त के बाद यह पेंशन उनकी पत्नी के नाम कर दी गयी। इसके अलावा बीमारी के दिनों में इलाज के लिए भी सरकार ने उन्हें आर्थिक सहायता दी थी। इस प्रकार भारत का शासक-वर्ग सदा जिगर की सेवाओं की सराहना करता रहा और समय-समय पर उनका सम्मान करता रहा।

जिगर हार्दिक रूप में भारत से प्रेम करते रहे थे। भारत में उन्होंने कुछ बातों पर टीका-टिप्पणी अवश्य की, किन्तु भारत के बाहर कभी एक शब्द भी भारत के विरुद्ध नहीं कहा और न किसी दूसरे से सुनना पसन्द किया। 1949 में एक कवि सम्मेलन के लिए वे कराची गए हुए थे। वहाँ एक सज्जन, जो उसी ज़माने में भारत से पाकिस्तान में आकर बसे थे, जिगर से बहुधा मिलने आते थे। बातचीत के दौरान वे भारत की आलोचना अवश्य करते थे। जिगर को उनकी यह बात पसन्द नहीं थी। एक दिन अपनी आदत के अनुसार जब वह हिन्दुस्तान की बुराइयाँ कर रहे थे, जिगर इसे सहन नहीं कर सके और तुरन्त बोले, "नमकहराम तो बहुत देखे थे, वतनहराम आज देख लिया।" वह सज्जन जिगर से इस पर इतने अप्रसन्न हुए कि फिर कभी मिलने नहीं आए। यद्यपि वह जिगर के अपने क्षेत्र के रहनेवाले थे। इस प्रकार जब जिगर के सामने कोई पाकिस्तान में महाजरीन[1] के कष्टों का उल्लेख करता तो, वे तुरन्त कह देते, "यह वतनहरामी की सज़ा है।"

जिगर की एक प्रसिद्ध कविता है—

"भाग मुसाफ़िर मेरे वतन[2] से, मेरे चमन[3] से भाग।"

---

1. देश छोड़कर आनेवाले शरणार्थी
2. देश
3. उपवन

इसमें देश की कुछ कमियों का उल्लेख है और देशवासियों से कुछ शिकायतें की गयी है। यह नज़्म[1] उन्होंने स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद लिखी थी। इस ज़माने में इसकी बड़ी चर्चा रही। प्रत्येक की ज़बान पर इसके शे'र रहते थे। इसी ज़माने में जिगर का पाकिस्तान जाना हुआ। वहाँ ख़्वाजा नाज़िमुद्दीन गवर्नर जनरल थे। वे जिगर का बड़ा सम्मान करते थे। उनके निवास-स्थान पर एक गोष्ठी थी। इसमें स्वयं नाज़िमुद्दीन ने जिगर से इस नज़्म का अनुरोध किया। किन्तु जिगर ने इसे सुनाने से साफ़ मना कर दिया और कहा, "वह शिकायत अपनों से थी। इसको मैं यहाँ नहीं सुना सकता।" उन्होंने आग्रह किया, किन्तु जिगर इसे सुनाने पर किसी भी तरह तैयार नहीं हुए। वे दूसरी ग़ज़लें सुनाकर अलग हो गए। इसी ज़माने में कराची के एक मुशायरे में किसी पाकिस्तानी शायर ने एक कविता पढ़ी, जिसमें भारत के विरुद्ध ज़हर उगला गया था और कश्मीर के लिए धर्म-युद्ध का आह्वान किया गया था। जिगर भी इस मुशायरे में सम्मिलित थे। उन्होंने मुशायरे में ही इस पर आपत्ति की और वहाँ से उठकर चले आए।

पाकिस्तान में जिगर बहुत लोकप्रिय थे। वहाँ इनके सैकड़ों प्रशंसक और घनिष्ठ मित्र थे। इन सबका प्रयास यही रहता कि जिगर देश छोड़कर पाकिस्तान चले आएँ। यहाँ तक कि स्वयं वहाँ के शासक-वर्ग ने भी जिगर से अनुरोध किया और भाँति-भाँति के प्रलोभन दिए, किन्तु जिगर कभी इनकी बातों में नहीं आए। 1949 ई. में उनके सामने एक प्रस्ताव रखा गया कि यदि वे भारत छोड़कर पाकिस्तान में बस जाएं तो उनके आश्रितों को किसी भी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होगा, तो जिगर ने अपने स्वाभाविक निश्छल स्वर में कहा, "तो इसका यह अर्थ है कि भारत मुझसे छूट जाएगा?" उत्तर मिला। "जी हाँ, आप पाकिस्तानी हो जाएंगे।" इस पर जिगर ने कहा, "तो फिर मैं नहीं आ सकता। मैं भारत नहीं छोड़ सकता। मैं मरना वहीं चाहता हूँ, जहाँ पैदा हुआ हूँ।" महमूद अलीख़ाँ जामई जो जिगर के निकट मित्रों में थे और पाकिस्तान चले गए थे, उनका कहना है—

जिगर साहब पाकिस्तान बनने के बाद देश छोड़कर यहाँ नहीं आए और लगातार गोंडे में ही निवास करते रहे। अनेक बार सजा-सजाया बँगला और मोटर पेश की गयी। कई सौ रुपये मासिक नियत करने का वचन दिया गया, किन्तु जिगर साहब पाकिस्तान आने पर कभी तैयार नहीं हुए। सदा ही उन्होंने यही उत्तर दिया कि जब तक भारत सरकार अपने व्यवहार से मुझे देश छोड़कर जाने पर विवश न कर दे, मैं यहाँ आने को तैयार नहीं हूँ।[2]

---

1. कविता
2. महमूद अलीख़ाँ जामई—तज़किर-ए-जिगर, पृ. 58

हज

जिगर को 1954 में हज का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका हृदय सदा धर्म के प्रकाश से देदीप्यमान रहा, यहाँ तक कि उस काल में भी जब कि उनके ऊपर मद्यपता और उन्मत्तता का भूत सवार था। धर्म की महत्ता उनके हृदय में यथावत् बनी रही और वे धर्म और धार्मिक व्यक्ति को सम्मान की दृष्टि से देखते रहे। विद्वानों और मनीषियों का वे सदा सम्मान करते रहे। जिगर का यह सौभाग्य रहा कि धार्मिक लोग उनसे विशेष रूप में सम्बन्ध रखते रहे। जिस ज़माने में जिगर पर शराब की लत सवार थी, यह वर्ग उसमें सुधार का प्रयत्न करता रहा। 1932 ई. जिगर का काव्य संकलन 'शोला-ए-तूर' प्रकाशित हुआ, तो अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी ने उसकी भूमिका लिखी। जिसमें उन्होंने कहा था—

"जिगर जन्मजात उन्मत्त मतवाले हैं। उसका दिल मस्ती में डूबा हुआ है। वह प्रेम का मतवाला है और ईश्वरीय प्रेम का अन्वेषी, भौतिक प्रेम के मार्ग से ईश्वरीय प्रेम की मंज़िल तक और देवालय से काबे के मार्ग को, और मदिरालय की मदिरा से उन्मत और बेसुध होकर स्वर्ग सरिता कौसर तक पहुँचना चाहता है। जिगर देखने में उन्मत किन्तु वास्तव में जागरूक है। उसकी आँखों में नशा है, किन्तु उसका दिल सचेत है और क्या आश्चर्य कि स्वयं जिगर को अपने दिल की ख़बर न हो। यदि ऐसा न हो, तो उसका काव्य प्रभावहीन ही रहे।"

सैयद सुलेमान नदवी का यह मत शत-प्रतिशत सही सिद्ध हुआ। जिगर वास्तव में भौतिक प्रेम के मार्ग से ईश्वरीय प्रेम की मंज़िल तक पहुंचे। पहले उन्होंने शराब छोड़ी, फिर अपने व्यक्तित्व को इस्लाम की मर्यादा के अनुसार ढाला और इसकी पूर्णता के लिए हज का सौभाग्य प्राप्त किया।

हज के सम्बन्ध में जिगर की कई घटनाएँ प्रचलित हैं। इनमें से एक घटना का वर्णन हज के तीर्थयात्री हलीद सिद्दीक़ी ने किया है। वे कहते हैं—

1938 में हज तीर्थयात्रियों के आगमन पर मैंने एक नज्म पढ़ी थी, जिसमें विनय सम्बन्धी पंक्तियों के सम्बन्ध में सहसा का एक शे'र दिल की गहराइयों से निकलकर ज़बान पर आ गया।

"हाज़िर दर[1]-ए-नबी में जिगर भी हों ए ख़ुदा,
आँखों में जोश-ए-अश्क़[2]-ए-नदामत[3] लिए हुए।"

यह कविता मैंने पहली बार साहस और हिम्मत के साथ उनके सुधार के

---

1. द्वार
2. आँसू
3. शर्मिन्दगी

उद्देश्य से प्रस्तुत की, तो उपर्युक्त शे'र पढ़कर इतने प्रभावित हुए कि रोने लगे और कहा कि दिल दिखाने की वस्तु नहीं है, नहीं तो दिखाता कि तुम्हारे स्नेहयुक्त प्रेम का कितना प्रभाव हुआ है और इसके बाद दुआएँ देने लगे।[1]

एक अन्य रोचक घटना का उल्लेख महमूद अलीखाँ जामई ने किया है। वे लिखते हैं—

"यहाँ एक घटना को उद्धृत करना उचित है, जिसका उल्लेख इस्तफ़ा ख़ाँ साहब ने किया है। ये सज्जन बहुत ईमानदार और श्रद्धेय व्यक्ति हैं और जिगर साहब के विशेष मित्रों में हैं। लगभग हर वर्ष हज करने का श्रेय प्राप्त करते हैं और मदीना मनव्वरा में उनका एक मकान इस्तफ़ा मंज़िल है।

उन्होंने बताया कि मदीना मनव्वरा के एक वयोवृद्ध मौलवी अब्दुल वहाब अंसारी ने एक स्वप्न में देखा कि जिगर गुम्बद-ए-खिज़रा के सामने खड़े हैं और लहक-लहककर अपनी कविता सुना रहे हैं। इस्तफा खाँ साहब ने उनसे पूछा कि आपने कभी जिगर को देखा है और उनको पढ़ते सुना है? उन्होंने उत्तर दिया, "कभी नहीं।" इस पर इस्तफ़ा खाँ ने पूछा, "अच्छा ज़रा उनका हुलिया तो बताइए।" तो उन्होंने कहा, "छोटा क़द, साँवला रंग, कुरूप, सिर के बाल बिखरे हुए, शेरवानी के बटन खुले हुए, मस्त और बेपरवाह।"

इस्तफ़ा खाँ ने इस घटना का उल्लेख जिगर से किया। फिर जब जिगर हज को गए तो अनुरोध करके इन सज्जन से मिले और कुछ देर बैठकर इनको अपनी कविता भी सुनायी। इसके बाद इस महापुरुष ने कहा, "वल्लाह! इसी रूप, रंग और इसी हुलिये का व्यक्ति इसी ढंग से रचना सुना रहा था।"[2] इस तरह यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिगर के सुधार और हज का सौभाग्य प्राप्त होने में महापुरुषों का आशीर्वाद और उनके आध्यात्मिक लाभ उन्हें प्राप्त थे।

जिगर जब हज को गए तो सऊदी अरब की सरकार ने उनकी बड़ी आव-भगत की। जब उनका जहाज़ जद्दा पोर्ट पहुंचा तो सऊदी अरब सरकार के उच्च अधिकारियों ने उनका स्वागत किया और राजकीय निमन्त्रण-पत्र दिया। जिगर के साथ उनकी पत्नी और कुछ दूसरे लोग भी थे। जिगर ने राजकीय अतिथि बनने से मनाकर दिया और कह दिया कि मेरे साथ जो लोग हैं, मैं उन्हें नहीं छोड़ सकता। अधिकारियों ने कहा कि हम इन लोगों के लिए भी निमन्त्रण-पत्र ले आते हैं। बाद में वे निमन्त्रण-पत्र ले भी आए, किन्तु जिगर ने फिर भी सरकारी मेहमान बनना पसन्द नहीं किया। वास्तव में उनके स्वभाव में सन्तोष और बेफ़िक्री सीमा से परे थी, जिसके कारण वे बड़े-से-बड़े सम्मान को ठुकरा देते थे।

---

1. फरोग़ उर्दू (जिगर नम्बर) मार्च-अप्रैल, 1961, पृ. 95-96
2. महमूद अलीखाँ जामई—तज़किर-ए-जिगर, पृ. 6

2

आमोद-प्रमोद

जिगर बड़े विनोदप्रिय व्यक्ति थे। हँसना और हँसाना उनके स्वभाव में शामिल था। उनके स्वभाव में गम्भीरता नहीं थी। मन को प्रसन्न रखने के लिए आमोद-प्रमोद के कार्यों में लगे रहते थे। कैरम, शतरंज और ताश में उनकी अधिक रुचि थी। इनमें भी ताश से विशेष लगाव था। ताश में भी रमी खेलते थे। शराब छोड़ने के बाद इसमें उनका शौक़ बहुत बढ़ गया था। किसी-किसी समय में इतना बढ़ जाता कि कई-कई दिनों तक निरन्तर खेलते रहते और खाने-पीने की भी सुध न रहती। उन्हें यह भी पता न रहता कि कौन मिलने आया था और कौन उठकर चला गया। खेल में वे इतने निमग्न हो जाते कि स्वयं को भूल जाते। एक बार जिगर पाकिस्तान गए। मरी में ठहरे हुए थे। वहाँ हर समय रमी खेलते रहते। मित्र लोग इनकी इस प्रकार की व्यस्तता से परेशान होते। इस पर शौक़त थानवी ने यह कहा था—"पता नहीं, मरी रमी में है, या रमी मरी में"। मित्र लोग उनको हर प्रकार से इससे दूर करने का प्रयत्न करते, परन्तु सफल न हुए। रमी में जिगर की रुचि किसी भी प्रकार कम न हुई। लोग जब उन्हें ज्यादा समझाते तो वे यह कहकर सफ़ाई देते—

"तुम्हें अनुमान होगा कि किसी वस्तु में निमग्न रहना अर्थात् स्वयं को भूल जाना मेरा स्वभाव है, या बन गया है। युवावस्था तक, मैं कविता करने में खोया रहता था। युवावस्था बीत जाने के बाद भावनाओं में वह उमंग जो कविता करने पर विवश करती है, कभी-कभी उत्पन्न होती है, इसलिए कविता में अब वह मस्ती या स्वयं को भूल जाने की स्थिति शेष नहीं रही। रहा मित्रों की गोष्ठियों में कविता सुनाना, तो जब तक कोई नयी ग़ज़ल न हो, वही पुराने शेर सुनाना मन को रुचिकर नहीं लगता। दूसरे, शेर सुनाने में फेफड़ों पर ज़ोर पड़ता है। अब गिरता हुआ स्वास्थ्य इसे सहन नहीं कर सकता। अब रहा स्वयं को भूल जाने का साधन शराब, वह मैंने छोड़ ही दी है। मुझे अपने आपको भुला देने और समय व्यतीत करने के लिए कुछ-न-कुछ तो चाहिए ही। यह मेरी आदत है कि जो भी काम करता हूँ इसमें सामान्य की सीमाओं पर निगाह नहीं रहती। इसलिए मैंने ताश खेलना आरम्भ

कर दिया है और अब इसी में इतना अधिक तल्लीन रहता हूँ।"[1]

मित्रों के आग्रह पर बेगम के डर से वह कभी-कभी इसे छोड़ने की प्रतिज्ञा भी कर लेते, किन्तु उसमें दृढ़ता न रहती। अधिक दिनों तक मन पर काबू नहीं रख सकते थे। अतः प्रतिज्ञा को भंग करके फिर खेलना आरम्भ कर देते थे। फिर भी गोंडा में निवास के दौरान पत्नी के भय से नहीं खेलते थे।

काव्य-रचना

जिगर ने छोटी आयु में ही कविता करना आरम्भ कर दिया था। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि उन्होंने 14-15 वर्ष की आयु में पहली ग़ज़ल कही थी। इस सम्बन्ध में स्वयं जिगर ने बड़ी रोचक घटना का उल्लेख किया है। वे कहते हैं—

> "मैं अपने ताऊ के साथ लखनऊ आया था। वहीं मैंने पहली ग़ज़ल कही थी। मेरे पिताजी बड़े विनोदी व्यक्ति थे और ग़ालिब के अनुयायी थे। मेरे ताऊ जी क़तील के प्रशंसक थे। मैं ग़ालिब को क़तील से वरीयता देता था। भाई मुहम्मद अहमद साहब मुझसे आयु में बहुत बड़े थे और क़तील के प्रशंसकों में से थे।"

हम दोनों की उम्र में अन्तर और अल्प ज्ञान के होते हुए भी वाद-विवाद होता रहता था। वही बातें जो सुनते थे, मैंने झुँझलाहट में एक ग़ज़ल फ़ारसी में कही। तखल्लुस[2] भी 'क़तील' रखा। एक दिन अवसर पाकर मैंने बहस छेड़ दी। मैंने कहा आप क़तील की बड़ी प्रशंसा करते हैं। देखिए मैं एक ग़ज़ल लाया हूँ। कितनी हल्की ग़ज़ल लिखी है। तब मेरी उम्र 14-15 वर्ष की थी। मैं जितना अन्तिम शे'र के समीप आता जाता था, पीछे हटता जाता था और दूर होता जाता था। उद्देश्य यह था कि ग़ज़ल पढ़ते ही भाग जाऊँगा। मक़्ते[3] के बाद मैंने झुककर प्रणाम किया और कहा यह मैंने कही है। यह कहकर मैं भागा और भाई साहब ने मुझे दौड़ाया। बात बड़ों तक पहुँची। मुझे बुलाया गया। पिताजी ने ग़ज़ल माँगी। मैंने इनकार किया। पिताजी ने समझाया कि झूठ नहीं बोलते। लाओ ग़ज़ल। मेरी ग़ज़ल देखी और कहा, "तुम शे'र अवश्य कहोगे, परन्तु अभी मत कहो।" यह वातावरण का प्रभाव था, जो मैंने ग़ज़ल कह ली थी। अन्तिम शे'र याद है। शुद्ध और अशुद्ध का भी ठीक से अनुमान न था।

---

1. महमूद अलीखाँ जामई—तज़किर-ए-जिगर
2. कवि का उपनाम
3. ग़ज़ल का अन्तिम शे'र जिसमें कवि अपना उपनाम जोड़ता है।

"कर्द मारा बयक नज़ारा क़तील,
ख़त्म बरतोस्त ए, च: राअनाई ।"[1]

(हमको तो एक ही दृष्टि में क़त्ल कर दिया। बस सौन्दर्य तो तुझ पर ही समाप्त है।)

यह विचित्र बात है कि जिगर ने कविता का श्रीगणेश फ़ारसी से किया। किन्तु बाद में वह पूरे मन से उर्दू काव्य-रचना में जुट गए। फ़ारसी में उनकी रचनाएँ बहुत कम हैं। आरम्भिक जीवन में उन्होंने फ़ारसी साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। वे खुसरो और हाफिज़ से बहुत प्रभावित थे। उन ही के प्रभाव से उन्होंने कुछ ग़ज़लें फ़ारसी में कहीं, किन्तु जैसे-जैसे इनका रंग निखरता गया, वह उर्दू की तरफ़ आते गए और फिर समस्त शक्ति उर्दू ग़ज़ल को समृद्ध करने में लगा दी।

जिगर ने सबसे पहले अपनी रचनाओं का परिशोधन दाग़ से कराया। दाग़ से उनकी कभी भेंट नहीं हुई, बल्कि पत्राचार द्वारा ही परिशोधन का कार्य कराया गया। यह दाग़ का आख़िरी समय था। वे हैदराबाद दकन में रहते थे। 1903 में उनका देहान्त हो गया। यही समय जिगर के काव्यारम्भ का है। अत: इस बात की सहज ही कल्पना की जा सकती है कि जिगर को एक-दो ग़ज़ल से अधिक भेजने का अवसर न मिला होगा। इसके बाद वे विधिवत् अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में 'रसा' रामपुरी से परामर्श लेते रहे। मुंशी हयात बख़्श रसा, वास्तव में बुलन्दशहर के रहनेवाले थे। लेकिन रामपुर में वकालत करते थे और शायरी की दृष्टि से नवाब हामिद अली खाँ के दरबार से सम्बन्ध रखते थे। नवाब इनका बड़ा आदर-सत्कार करते थे। ये अपने समय के सिद्धहस्त कलाकारों में थे और काव्याचार्यों में गिने जाते थे। शे'र पढ़ने में उन्हें विशेष दक्षता प्राप्त थी। वे शे'र की पूर्ण प्रति-मूर्ति बन जाते थे। एक बार बदायूँ में अखिल भारतीय मुशायरा था। रसा इसमें भाग ले रहे थे। इसमें ग़ज़ल सुनाते समय जब उन्होंने यह मिस्रा पढ़ा---

"डालकर बाँहें गले में कर दिया पानी मुझे।"

तो वे मंच से कुछ इस प्रकार चिपक गए कि मुशायरे में उपस्थित लोग यह समझने लगे कि सचमुच वे पानी में बह जाएँगे।

आरम्भ में जिगर ने कुछ ग़ज़लें डाक द्वारा उनके पास रामपुर भेजीं। फिर दो-तीन बार स्वयं रामपुर जाकर उनसे लाभान्वित हुए। इस प्रकार हज़रत रसा रामपुरी जिगर के विधिवत् गुरु बन गए। जिगर सदा उनका इसी प्रकार सम्मान करते थे। रामपुर में निवास के दौरान 'रसा' के निर्देश पर मुंशी अमीर अल्लाह

---

1. हयात जिगर का एक बाब : हज़रत जिगर की ज़बानी, लेखक : क़ैसी-उल-फ़ारूक़ी, क़ौमी आवाज़, लखनऊ, 19 सितम्बर, 1960, पृ. 4

'तस्लीम' से भी भेंट की। किन्तु यह भेंट केवल भेंट मात्र थी। साहित्यिक परामर्श के सम्बन्ध में नहीं थी। एक आम धारणा यह है कि उन्होंने 'तस्लीम' से भी अपनी रचनाओं में संशोधन कराया था। किन्तु इसमें कोई सच्चाई नहीं है। वास्तविकता यह है कि जिगर ने 'तस्लीम' से कभी भी अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में परामर्श नहीं किया। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि उन्होंने असग़र गोंडवी से भी अपनी काव्य-रचनाओं का परिशोधन कराया था। इस धारणा की पुष्टि जिगर के इस शे'र से भी हो जाती है।

हरीम[1]-ए-हुस्न-ए-माअनी है जिगर काशानाए[2]-ए-असग़र,
जो बैठो बाअदब होकर, तो उठो बाख़बर होकर।

किन्तु यहाँ उद्देश्य एक आदरणीय व्यक्ति के प्रति सम्मान प्रकट करना मात्र है, शिष्यत्व प्रकट करना नहीं। रशीद अहमद सिद्दीकी के शब्दों में—

> "जिगर को असग़र के प्रति गहरी आस्था थी। किन्तु शायरी में असग़र से बिल्कुल अलग हैं। असग़र से उनका अगाध प्रेम व्यक्तिगत है, काव्यात्मक नहीं, जिस प्रकार हाली का ग़ालिब से है।"[3]

एक ज़माने में 'सीमाब' अकबराबादी ने भी दावा किया था कि जिगर ने उनसे अपनी रचनाओं का परिशोधन कराया है। जिगर से जब इसके बारे में पूछा गया तो उन्होंने ज़ोरदार शब्दों में इसका विरोध किया और कहा—

"चन्द्रमा पर धूल किसने डाली है। सीमाब साहब कहते हैं तो कहने दो। दुनिया जानती है कि मैं उनका शिष्य नही हूँ। मेरी काव्य शैली उनसे भिन्न है। मैं उनसे अधिक प्रसिद्ध हूँ।"[4]

तथापि, जिगर इतना अवश्य कहा करते थे कि वह समय उनकी बेसुधी का था। संभव है कि कोई ग़ज़ल सीमाब के यहाँ रह गयी हो और उन्होंने इसमें परिशोधन कर दिया हो। अतः केवल इतनी-सी बात पर जिगर को 'सीमाब' का शिष्य नहीं माना जा सकता। वास्तव में जिगर के दो ही काव्य-गुरु थे। एक 'दाग़' और दूसरे 'रसा' रामपुरी। जिगर स्वयं इन्ही को अपना गुरु स्वीकार करते थे और इसी रूप में उनका आदर भी करते थे।

कविता पढ़ने की शैली

जिगर एक विचित्र शैली में काव्य-पाठ करते थे। ऐसा अनुभव होता था जैसे

---

1. घर के चारों ओर की दीवार
2. घर
3. जिगर मेरी नज़र में (मशमूला; आतिशे गुल), पृ. 33
4. वही, पृ. 33

उन पर कविता का अवतरण हो रहा है। कविता-पाठ के दौरान उनके मुख-मण्डल पर विविध भाव प्रकट होते थे। कई बार मन के प्रवाह में निरन्तर कई शे'र एक ही अन्दाज़ में कह डालते। यही कारण है कि उनकी ग़ज़लों में साधारणतया एक भावात्मक निरन्तरता पायी जाती है। यदि किसी मिस्रे पर अटक जाते तो उसे छोड़कर दूसरे शे'र की ओर ध्यान देते और फिर किसी समय मन को अनुकूल पाकर इस मिस्रे पर दूसरा मिस्रा जोड़ देते। जिगर अनुरोध पर शे'र नहीं कह सकते थे। वे पूर्णतया सहजमना कवि थे। अतः किसी ऐसे वातावरण में जहाँ मन न मानता हो, जिगर शे'र नहीं कह सकते थे। महमूद अली खाँ जामई ने उनके शे'र कहने का चित्र बड़ी सुन्दर शैली में प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं—

"वैसे जिगर साहब अधिक रात गए, जब सब सो जाते हैं तो एकान्त में शे'र कहने के आदी हैं। उस समय उनके पास बहुत बढ़िया प्रवाहवाली लेखनी, बहुत तेज़ स्याही और बहुत साफ़, स्वच्छ कागज़ या पैड होने चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि ज़मीन[1] पसन्द आना आवश्यक शर्त है। फिर यह नहीं देखते कि क़ाफ़िये[2] की प्रचुरता है या नहीं। रदीफ़[3] हाथ आती है या नहीं। बस जो बहर[4] पसन्द आ गयी, उसी पर कहना आरम्भ कर दिया। सबसे पहले कागज़ पर अत्यन्त स्वच्छ लेखनी में 'बिस्मिल्लाह'[5] लिखा जाता है। इसके बाद जिस ज़मीन में ग़ज़ल कह रहे हैं उसका क़ाफ़िया और रदीफ़ और जिस क़ाफ़िये पर शे'र कर रहे हैं उसके साथ दो-तीन शब्द लिखे जाते हैं। जैसे—बहार आ ही गया, जाने बहार आ ही गया, यथा, वह जाने बहार आ ही गया। फिर इस पर पहला मिस्रा बड़े बाँकेपन और बड़ी सुन्दरता से लगाते हैं, जो अत्यंत सुसंगत और सुस्पष्ट होता है। दोनों मिस्रों में कोई रिक्ति नहीं होती है। एक शे'र पूर्ण होने तक कई बार लिखा जाता है और कागज़ पर बहुत से अपूर्ण शे'र आधे, तिहाई और चौथाई लिखे हुए होते हैं। इस प्रकार एक कागज़ के बाद दूसरा आरम्भ होता है। इस पर भी पहले इसी व्यवस्था से 'बिस्मिल्लाह' लिखा होता है। फिर सारे मिस्रे साफ़ किए जाते हैं। तब कहीं आगे कहने की चिन्ता होती है। थोड़ी देर में लिखे हुए कागज़ों का एक ढेर लग जाता है, जिनमें कहे हुए शे'रों के अलावा भाँति-भाँति के बेल-बूटे तथा चित्रकारी के नमूने बने होते हैं, क्योंकि जिगर साहब को बेल-बूटे बनाने में विशेष रुचि है। यह उनकी विशेषता है कि शे'र पर विचार करने के दौरान वे बहुधा, जो कागज़ उनके

1. ग़ज़ल का क़ाफ़िया, रदीफ़ और वज़न
2. अन्त्यानुप्रास
3. ग़ज़ल में क़ाफ़िये के बाद आनेवाला शब्द
4. छन्द
5. ईश्वर के नाम के साथ

सामने आता है, उस पर सुन्दर फूल बनाते रहते हैं।"[1]

काव्य-पाठ की शैली

जिगर लयात्मक स्वर में काव्य-पाठ करते थे। उन्हें संगीत का पर्याप्त ज्ञान था। स्वर बड़ा लोचदार और आकर्षक था। इसलिए जिस गोष्ठी में वे अपनी रचना सुनाते, उसे संगीतमय बना लेते थे। वे कविता में पूर्णतः डूब जाते और श्रोताओं को भी मन्त्र-मुग्ध कर लेते थे। जिस कवि-सम्मेलन में भाग लेते उस पर पूरी तरह छा जाते। दूसरों का दिया उनके सामने मुश्किल से जलता था। कविता पढ़ने की जिगर की शैली उनकी युवावस्था में बड़ी लोकप्रिय रही और इस सीमा तक पसन्द की जाती थी कि लोगों ने उनका अनुसरण करना आरम्भ कर दिया था और ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो जिगर के लयात्मक स्वर में कविता-पाठ कर सकता था, स्वयं को सफल कवि मानता था। बैरिस्टर इश्तियाक़ अहमद अब्बासी लखनवी ने जिगर द्वारा मुशायरे में रचना प्रस्तुत करने की आँखों देखी एक घटना का वर्णन किया है। वह लिखते हैं—

मैं एक मुशायरे का दृश्य आज तक नहीं भूला हूँ और मेरे अलावा भी अन्य लोग उसे नहीं भूले होंगे। शायद यह पहला अवसर था, जब मैंने उन्हें मुशायरे में पढ़ते हुए सुना था। यह मुशायरा लखनऊ विश्वविद्यालय का था और जिगर साहब वहाँ इस दशा में लाए गए थे कि मानो वह कुछ पढ़ ही न सकेंगे। किन्तु उनकी बारी आयी तो वे तनिक सँभले और उन्होंने अपनी ग़ज़ल पढ़नी शुरू की। जब लहराकर उन्होंने यह शे'र पढ़ा—

उसने शानों[2] पे ज़ुल्फ़ बरहम[3] की,
ख़ैर, यारब[4], निज़ाम[5]-ए-आलम[6] की।

तो सारी महफ़िल झूम उठी। फिर सारी प्रबन्ध-व्यवस्था पर क्या बीती इसको तो प्रबन्ध-व्यवस्था ही जानती होगी। किन्तु श्रोताओं की जो दशा थी और मुशायरे के व्यवस्थापकों पर जो गुज़री थी, वह याद है और सदा याद रहेगी।[7]

सामान्यतः यह देखा गया है कि कवि सम्मेलनों में, बड़े कवि बड़े सचेत रहते हैं और अन्य कवियों की प्रशंसा करने में कंजूसी से काम लेते हैं। किन्तु जिगर का रवैया इन लोगों से बिल्कुल भिन्न था। वे सदा दिल खोलकर प्रशंसा करते और योग्य कवियों को प्रोत्साहन देते। वे स्वयं को श्रोताओं की श्रेणी में शामिल करते, विशिष्ट व्यक्तियों में नहीं। इस प्रकार उन्होंने अपने व्यक्तित्व को और भी अधिक आकर्षक और लोकप्रिय बना लिया था।

---

1. महमूद अली ख़ाँ जामई, तज़किरा-ए-जिगर, पृ. 108-109
2. कन्धों, 3. अव्यवस्थित, बे-तरतीब, 4. हे ईश्वर, 5. प्रबन्ध, 6. संसार
7. फ़रोग़े उर्दू (लखनऊ) जिगर नवम्बर, 1961, पृ. 43-44

फ़िल्म कम्पनी से सम्बन्ध

जिगर को फ़िल्मी दुनिया ने अपनाना चाहा। भारी धनराशि के प्रलोभन दिए और हर प्रकार से उनकी चापलूसी की, किन्तु जिगर इस ओर आकृष्ट नहीं हुए। वे इससे सम्बन्धित होने को धर्म के विरुद्ध समझते थे और किसी भी फ़िल्म में सम्मिलित होने को पाप मानते थे। इसलिए उन्होंने फ़िल्मवालों के हर प्रस्ताव को ठुकरा दिया। एक बार 'कारदार फ़िल्म' कम्पनीवालों ने उनको इस बात के लिए तैयार कर ही दिया कि वे फ़िल्म के लिए दस ग़ज़लें कह देंगे। इसके लिए दस हज़ार रुपये की धनराशि भी तय हो गयी और पाँच हजार रुपये की अग्रिम राशि का जिगर को भुगतान भी कर दिया गया। जिगर की भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए भी निश्चित हो गया कि अवधि का कोई बन्धन नहीं। जिगर साहब जब चाहें ये ग़ज़लें दे दें। किन्तु जिस दिन यह अग्रिम धनराशि जिगर के पास पहुँची, उसी रात उन्होंने स्वप्न देखा कि एक छोटा-सा पहाड़ है, बहुत गन्दा। इस पर एक शेर बैठा है। पहाड़ की तराई में बहुत-से लोग उपस्थित हैं। शेर अपने पंजों से चारों ओर गन्दगी उछाल रहा है। इस गन्दगी को लोग अपने पल्ले में लिए जा रहे है। जिगर के पल्ले में भी थोड़ी-सी आ गयी। इतना देखकर उनकी आँखें खुल गयी। इस स्वप्न का अर्थ उन्होंने यह लगा लिया कि गन्दगी फ़िल्म कम्पनी का धन था और चूँकि इस फ़िल्म कम्पनी से उन्होंने भी क़रार कर लिया था, इसलिए यह गन्दगी उनके पल्ले पर भी लग गयी। अतः उन्होंने तुरन्त इसे समाप्त करने की प्रतिज्ञा की। क़रार समाप्त किया और रक़म वापस कर दी।[1]

1942 ई. में फज्ल अहमद फज़ली ने एक संक्षिप्त-सी फ़िल्म (वृत्त चित्र) 'आसमानी मुशायरा' बनायी थी। इसमें जीवित कवियों ने दिवंगत कवियों की भूमिका निभायी थी। बाबाए उर्दू मौलवी अब्दुल हक़ ने मौलाना 'हाली' ख़्वाजा हसन निज़ामी ने नज़ीर अकबराबादी और अल्लामा रज़ा अली वहशत ने मिर्ज़ा ग़ालिब की भूमिका निभायी थी। जिगर मुरादाबादी 'दाग़' बने थे। इसके लिए भी जिगर सहमत नहीं थे। किन्तु जब फ़ज़ली साहब ने आग्रह किया तो वे इन्कार का साहस न कर सके। हाँ, इतना अवश्य किया कि इससे छुटकारा पाने के लिए बहुत अधिक धनराशि प्रतिपूर्ति के रूप में माँगी। यह अनुमान था कि इतनी बड़ी राशि फ़िल्म निर्माता नहीं दे सकेंगे और छुटकारा मिल जाएगा। किन्तु उन्हें यह अनुमान नहीं था कि जिस राशि को वे बहुत अधिक समझ रहे हैं, फ़िल्मी संसार में इसका कोई महत्त्व नहीं। अतः जिगर की माँग तत्काल स्वीकार कर ली गयी। इसके बाद इन्कार का कोई पहलू नहीं रह गया था। फलतः विवश होकर उन्हें 'दाग़' की भूमिका निभानी पड़ी। इस प्रकार जिगर के चरित्र का यह पक्ष विशेष रूप से

1. जिगर मुरादाबादी—हयात और शायरी, लेखक : मुहम्मद इस्लाम, पृ. 1-9

ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने साहित्य-विक्रय को कभी अपनाना स्वीकार नहीं किया और उस काल में जबकि स्वयं उनके समकालीन लोगों में जोश मलीहाबादी, शक़ील बदायूनी, सागर निज़ामी, मुंशी प्रेमचन्द, सआदत हसन मंटो और कृश्नचन्दर जैसे कवियों और साहित्यकारों ने फ़िल्मी दुनिया से संबंधित होकर धन के साथ-साथ ख्याति भी अर्जित की और नाम कमाया। जिगर ने फ़िल्म निर्माताओं के अत्यधिक प्रयासों के बावजूद अपने आपको इस गन्दगी से बचाए रखा।

रेडियो के लिए ग़ज़ल की रिकार्डिंग

3 नवम्बर, 1959 को लखनऊ रेडियो स्टेशन में एक रेडियो कवि सम्मेलन का आयोजन होनेवाला था। इस ज़माने में जिगर सख़्त बीमार थे और कवि सम्मेलन में भाग लेने के योग्य नहीं थे। किन्तु रेडियोवालों का आग्रह था कि कैसे भी हो, उन्हें शामिल किया जाए। किन्तु कमज़ोरी इतनी थी कि वह रेडियो स्टेशन नहीं जा सकते थे। अन्त में एक मध्यम वर्ग अपनाया गया कि कवि सम्मेलन से पूर्व उनकी एक ग़ज़ल रिकार्ड कर ली जाए। अत: रेडियो की ओर से श्री शफ़ाअत अली सिद्दीक़ी ग़ज़ल रिकार्ड करने के लिए जिगर के निवास-स्थान पर पहुँचे। उनका कहना है—

"बीमारी ने जिगर साहब को निढाल कर दिया था। रोग भले ही कुछ कम हो, किन्तु कमज़ोरी इतनी अधिक थी कि बिना किसी सहारे के बैठ भी नहीं सकते थे। उन्होंने बड़े प्रसन्न-चित्त मुद्रा में मुस्कराकर हम लोगों का स्वागत किया। कुशलता पूछी, अपनी कुशलता सुनायी। फिर बहुत थके और निढाल स्वर में डॉ. अब्दुल हमीद साहब से अपने रोग के बारे में दो-चार बातें कीं। उन्होंने बातों-ही-बातों में उनको ऐसा बहलाया और ऐसी फुलझड़ियाँ छोड़ीं कि कमरे का वातावरण एकदम बदल गया। होते-होते बात 'शेरो-शायरी' तक आ गयी। मानो जिगर साहब को कोई भूली बात याद आ गयी हो। कहने लगे, "आप लोगों को काफ़ी विलम्ब हो गया। बड़ा समय नष्ट हुआ। लीजिए, मैं तैयार हूँ। आप रिकार्डिंग आरम्भ कीजिए। अब उनसे कौन कहता है कि जिगर के सामीप्य से बढ़कर इस समय कोई अन्य वस्तु मूल्यवान् नहीं है। हमने आज्ञा का पालन किया। जिगर साहब तकियों के सहारे सँभलकर बैठ गए। बड़े निर्बल स्वर में उन्होंने ग़ज़ल आरम्भ की—

जानकर मिनजुमलाए[1] ख़ासाने[2] मैख़ाना[3] मुझे,
मुद्दतों रोया करेंगे जाम[4] ओ-पैमाना[5] मुझे।

मुझे भली-भाँति याद है कि फूलती हुई साँस, कमज़ोरी से लड़खड़ाती हुई

1. सब में से, 2. विशेष लोग, 3. मदिरालय, 4. प्याला, 5. शराब

ज़बान और निर्बल स्वर में यह मतला[1] सुनते ही सबके दिल धड़कने लगे थे।[2]

इसी प्रकार की एक घटना का वर्णन श्री एम. एन. कौल ने किया है। ये ऑल इण्डिया रेडियो से सम्बन्धित थे। इनको लखनऊ रेडियो स्टेशन की ओर से जिगर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक इंटरव्यू रिकार्ड करने का काम सौंपा गया। जिगर के निवास गोंडा जाना पड़ा। यह जून, 1959 की घटना है। इण्टरव्यू के लिए जिगर से पहले ही अनुमति ले ली गयी थी। किन्तु इन दिनों वे काफ़ी बीमार थे और बहुत कमज़ोर हो गए थे। इसके बावजूद उन्होंने कौल साहब का बड़ा हार्दिक स्वागत किया और उनकी सुख-सुविधा का बड़ा ध्यान रखा। कौल साहब कहते हैं—

"हम लोग जिगर साहब की सेवा में गोंडा पहुँच गए। देखा तो बड़ी निराशा हुई। जिगर साहब लगातार बीमारी से इतने निर्बल और अशक्त हो गए थे कि एक नज़र में उन्हें पहचानना कठिन था। हज़ारों के जनसमुदाय को मन्त्र-मुग्ध कर देनेवाली आवाज़ निष्ठुर रुग्णता ने समाप्त कर दी थी। कमज़ोरी के कारण इनसे बात भी नहीं की जा रही थी। किन्तु मुख-मण्डल पर वही आभा, वही तेज़ और मुस्कराहट में वही आकर्षण विद्यमान था, जो परमात्मा के निष्कपट प्राणियों में देखा गया है। सख़्त बीमारी और कष्टों के बावजूद, जिगर साहब को ठहरने, उठने, बैठने खाने-पीने और सुख-सुविधा का ध्यान था। मैंने दूसरे स्थान पर ठहरने का विचार व्यक्त किया किन्तु जिगर साहब न माने। उनके इस इन्कार में मैंने उस स्नेह और वात्सल्य की झलक देखी जो बचपन में अंग्रेज़ों से मिला करता था।

"जिन दिनों हम रिकार्डिंग के लिए पहुँचे थे जिगर साहब की दशा अपेक्षाकृत अच्छी थी। किंतु उनकी कमज़ोरी को देखकर यही समझ में आता था कि रिकार्डिंग के बिना वापस चला जाए और ज़ब स्वास्थ्य कुछ ठीक हो जाए तब फिर आया जाए। किन्तु जिगर साहब को जब यह ज्ञात हुआ तो वे इण्टरव्यू के लिए तैयार हो गए। कमज़ोरी यहाँ तक, कि पूरी बात मुँह से नहीं निकल पाती थी। कुछ देर बात करते तो थक जाते। आँखें बन्द कर लेते और कुछ देर तक बिल्कुल शान्त रहते। फिर सँभलते और हम लोगों को रिकार्डिंग के लिए कहते थे। इस प्रकार कुल तेरह या चौदह मिनट की रिकार्डिंग में कई घण्टे लग गए। रिकार्डिंग के समाप्त होने पर जिगर साहब बहुत प्रसन्न थे। इसलिए कि हम लोगों का काम बन गया था और हम जिगर साहब के द्वार से ख़ाली हाथ और निराश नहीं लौट रहे थे। यह एक उदाहरण है, जो कठिनाई से मिलेगा।"[3]

---

1. ग़ज़ल का पहला शे'र
2. क़ौमी आवाज (लखनऊ), 19 सितम्बर, 1960, पृ. 4
3. फरोग़े उर्दू (लखनऊ), जिगर नम्बर, 1961, पृ. 87-86

मृत्यु के समाचार

जिगर के जीवन में उनकी मृत्यु के समाचार दो बार फैले। पहली बार 4 मई, 1938 को और दूसरी बार 1958 में। पहली बार इस कारण कि मुरादाबाद में वह कुछ मित्रों के साथ शिकार को गए थे। वहाँ वह अपने साथियों को छोड़कर दिल बहलाने के लिए समीप के किसी गाँव में निकल गए और वापसी में उनके साथ नहीं आए। बस क्या था, शत्रुओं को अवसर मिल गया। उन्होंने प्रचार कर दिया 'जिगर अल्लाह को प्यारे हो गए'। वहीं से अंग्रेज़ी दैनिक 'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधि ने तार द्वारा समाचारपत्र को यह सूचना दे दी। अगले दिन यह समाचार समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो गया। समाचार का निकलना था कि सारे देश में शोक की लहर दौड़ गयी। कुछ समाचार-पत्रों ने तो विशेषांक भी प्रकाशित कर दिए। सर्वत्र शोक-सभाएँ हुईं। दिल्ली की जामा मस्जिद में भी शोक सभा हुई और जुमे की नमाज़ के बाद ग़ायबाना[1] नमाज़-ए-जनाजा भी पढ़ी गयी, किन्तु शीघ्र ही लोगों को वास्तविकता का पता चल गया। इस समाचार में कोई सचाई न थी। जिगर अभी ज़िन्दा थे इसलिए तुरन्त इसका खण्डन कर दिया गया। ऑल इण्डिया रेडियो ने उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए 'जिगर दिवस' मनाने का निर्णय किया था। किन्तु इससे पूर्व ही जिगर के जीवित होने का समाचार फैल गया। अतः बजाए 'मृत्यु दिवस' मनाने के उनके 'नव-जीवन' का शुभ दिन मनाया गया। इस कार्यक्रम में स्वयं जिगर भी शामिल हुए और अपनी रचना स्वयं अपने लयात्मक स्वर में प्रस्तुत की।

1958 में जिगर को दिल का सख़्त दौरा पड़ा। इस समय भी इनके देहान्त का समाचार फैल गया। भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में यह समाचार बड़ी तेज़ी से फैल गया। पाकिस्तान में पहले लाहौर के समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ। इनसे कराची के अख़बारों ने नक़ल की। इस बार भी बड़ी शोक सभाएँ हुईं। लाहौर की एक सभा की अध्यक्षता अहसान दानिश ने भी की। किन्तु सौभाग्य से इस बार भी शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि यह समाचार गलत है और भगवान् की कृपा से जिगर अब भी जीवित हैं। इस समाचार का खण्डन हो जाने पर प्रसिद्ध व्यंग्य लेखक शौक़त थानवी ने दैनिक 'जंग' कराची में लिखा था कि पहले समाचार के बाद जिगर साहब की आयु बीस वर्ष बढ़ गयी थी और अब इस समाचार के बाद फिर कम-से-कम बीस वर्ष की वृद्धि की आशा है।

देहान्त

जिगर हृदय रोग के पुराने मरीज़ थे। यह रोग अधिक मदिरापान के कारण

---

1. अनुपस्थिति में पढ़ी जानेवाली नमाज़

हुआ था। इसका पहला आक्रमण 1942 में हुआ था। यह दौरा बहुत घातक था। इससे इस समय वह बच तो गए, किन्तु इसका प्रभाव सदा बना रहा। शराब छोड़ देने के बाद रोग में कमी हो गयी थी, किन्तु पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। इसके अलावा मुशायरों में जिगर को रात-रात भर जागना पड़ता। यह उनके बिगड़े स्वास्थ्य के लिए और भी हानिकारक था। शराब पीने के दौरान कई-कई दिनों तक भोजन नहीं करते थे। इस प्रकार विभिन्न कारणों से उनका स्वास्थ्य बिगड़ता रहा। 1956 में उनका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया कि वे अपने जीवन से पूरी तरह निराश हो गए। अब उनके फेफड़े, हृदय और आमाशय सब अत्यधिक प्रभावित हो चुके थे। 1958 में फिर दिल का दौरा पड़ा और वे लखनऊ के हस्पताल में काफ़ी समय तक इलाज कराते रहे। कुछ फ़ुर्सत हुई तो गोंडा चले गए। अब इनका उठना-बैठना भी कठिन हो गया। अतः 9 सितम्बर, 1960 को प्रातः 9 और 10 बजे के बीच दिल का एक और भयंकर दौरा पड़ा और जिगर सदा के लिए संसार से विदा हो गए।

दिल को सकून[1], रूह[2] को आराम आ गया,
मौत आ गयी कि यार का पैग़ाम आ गया।

इसी शाम को गोंडा के मुहम्मद अली पार्क में दफ़न कर दिए गए। नमाज़ जनाज़ा उनके घनिष्ठ मित्र मुफ्ती मुहम्मद रज़ा अंसारी फिरंगी महली ने पढ़ायी। शव-यात्रा में पाँच-छह हज़ार लोग शामिल थे। देहान्त से कोई महीना, डेढ़ महीना पहले से उन्हें मृत्यु के आसार दिखायी देने लगे थे। अतः उन्होंने वसीयत करना आरंभ कर दिया था। हिसाब चुकाने लगे थे और अपनी वस्तुएँ दूसरों को स्मृति-स्वरूप देने लग गए थे।

काव्य रचनाओं का प्रकाशन

जिगर के जीवन में उनकी काव्य रचनाओं में तीन संकलन प्रकाशित हुए। पहला 'दाग़े जिगर', दूसरा 'शोला-ए-तूर' और तीसरा 'आतिशे गुल'।

दाग़े जिगर

इसे मिर्ज़ा अहसान अहमद वकील, आज़मगढ़ ने सम्पादित करके बज़्मे अदब, आज़मगढ़ से प्रकाशित कराया था। इस पर प्रकाशन की तारीख अंकित नहीं है और न ही मिर्ज़ा साहब की भूमिका पर कोई तारीख़ ही लिखी है। फिर भी, अनुमान है कि यह 1922 में प्रकाशित हुआ था। इसका प्रमाण स्वयं मिर्ज़ा साहब के अनेक पत्रों से भी मिलता है। इसमें बज़्मे अदब के अध्यक्ष मौलाना अब्दुस्सलाम नदवी

---

1. चैन, 2. आत्मा

की एक संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणी है। फिर 44 पृष्ठों की मिर्ज़ा अहसान अहमद की एक लम्बी भूमिका है, जिसमें जिगर का जीवन परिचय और उनके काव्य की समीक्षा दी गयी है और समकालीन कवियों से इनकी तुलना की गयी है। मिर्ज़ा साहब जिगर के बड़े प्रशंसक थे और आयु पर्यन्त समकालीन कवियों से इन्हें श्रेष्ठ मानते रहे। इनका मत है—

"हज़रत जिगर का वास्तविक गर्व करने योग्य कार्य ग़ज़ल है। यद्यपि उनके काव्य में दाग़ का प्रभाव बहुत स्पष्ट है, फिर भी काव्य-पारखी और काव्य-प्रेमी इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि वे इस क्षेत्र में एक शैली विशेष के आविष्कर्त्ता हैं, जो श्रेय इस समय किसी को प्राप्त नहीं है। अज़ीज, जोश, हसरत, साक़िब आदि की गीतात्मक शैलियाँ निस्सन्देह वर्तमान ग़ज़ल काव्य के लिए अमूल्यनिधि हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि जिगर साहब अपनी कलात्मक प्रतिभा के सूर्य हैं, जिसने इन समस्त नक्षत्रों को प्रकाशहीन कर दिया है।"

भूमिका के बाद 80 पृष्ठों में जिगर का काव्य है जो अधिकतर ग़ज़लों पर आधारित है। अन्त में एक मसनवी[1] 'सरूद हक़ीक़त' शामिल कर दी गयी है। 'दाग़े जिगर' का कोई अन्य संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ।

शोला-ए-तूर

जिगर का दूसरा काव्य संकलन 'शोला-ए-तूर' के नाम से पहली बार 1932 में अलीगढ़ से प्रकाशित हुआ। मैनपुरी में एक वेश्या थी, शीराज़न। यह बहुत सुसभ्य और सुशील महिला थी। जिगर उन दिनों मैनपुरी में ठहरे हुए थे। उनकी भेंट शीराज़न से हुई और शीघ्र ही उनसे गहरे सम्बन्ध हो गए। यह जिगर की काव्यात्मक प्रतिभा की दिल से प्रशंसक थी और अपनी विशिष्ट गोष्ठियों में अधिकतर जिगर की ग़ज़लें ही पढ़ती थी। जिगर भी बहुधा इनके ही घर पड़े रहते थे। इनके घर में जिगर साहब के लिए कमरा सुरक्षित था। इसकी छत को वे 'तूर' कहा करते थे। यह काव्य-संकलन इसी ज़माने की यादगार है। इसलिए इसका नाम उन्होंने 'शोला-ए-तूर' रखा। इस संस्करण में केवल चुनी हुई रचनाएँ ही शामिल की गयी हैं। चयन का कार्य हामिद सईद खाँ 'हामिद' भोपाली ने किया था। इस सम्बन्ध में जिगर से कोई परामर्श नहीं किया गया। इसीलिए इनकी अधिकांश रचनाएँ छोड़ दी गयी थी। जिगर ने प्रकाशन के बाद देखा तो उन्होंने इसे नापसंद

---

1. उर्दू का एक काव्य-रूप जिसके हर शे'र के दोनों मिस्रे सानुप्रास होते हैं, परन्तु प्रत्येक शे'र क़ाफ़िये और रदीफ़ में दूसरे शे'र से नहीं मिलता।

किया। अतः इसका व्यापक प्रचार नहीं किया गया और इसकी सभी प्रतियाँ नष्ट कर दी गयीं। इसके प्रकाशन के सभी व्यय भोपाल के युवराज नवाबज़ादा रशीद-उल-ज़फर ख़ाँ ने वहन किए। इसलिए इसे इन्हीं के नाम पर समर्पित किया गया।

'शोला-ए-तूर' का दूसरा संस्करण 1934 में मक़तबा जामिया, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें उस समय तक की समस्त रचनाएँ प्रकाशित की गयी हैं। समस्त काव्य रचनाओं को चार दौरों[1] में विभाजित किया गया है और प्रत्येक दौर की रचनाओं को पृथक् शीर्षक देकर इस प्रकार से क्रमबद्ध किया गया है—

1. वारदाते[2] जिगर अर्थात् वर्तमान काल की रचनाएँ या चौथा दौर।
2. जज़बाते[3] जिगर अर्थात् तीसरे दौर की रचनाएँ।
3. तजल्लियाते[4] जिगर अर्थात् दूसरा दौर।
4. अहसासाते[5] जिगर अर्थात् पहले दौर की दो-तीन ग़ज़लें, जो दाग़े जिगर में मौजूद नहीं।
5. इशाराते[6] जिगर अर्थात् आरम्भिक दौर की दो ग़ज़लें।
6. बाक़ियातु[7] सालिहात अर्थात् वर्तमान दौर की परिशिष्ट रचनाएँ।
7. जलवा[8]-ए-तूर अर्थात् तख़्मीसात[9]।
8. लमआते[10] तूर अर्थात् उर्दू की नज़्में।
9. बादा-[11]ए-शीराज़ अर्थात् फ़ारसी रचनाएँ।

आरम्भ में जिगर ने स्वयं अपनी काव्य-रचनाओं के बारे में विचार व्यक्त किए हैं 'फिर ऐलाने हक़' शीर्षक के अन्तर्गत असग़र गोंडवी को श्रद्धा-सुमन प्रस्तुत किए गए हैं। इसके बाद आठ पृष्ठों पर अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी की 'प्रस्तावना' है।

'शोला-ए-तूर' के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं, जिनमें असली और जाली दोनों प्रकार के संस्करण सम्मिलित हैं।

आतिशे गुल

जिगर का तीसरा काव्य-संकलन 1954 में ढाका में प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रो. रशीद अहमद सिद्दीक़ी का एक लम्बा लेख, 'जिगर मेरी नज़र में' और प्रो. आले अहमद सरूर की भूमिका शामिल है। उसमें उर्दू की 97 ग़ज़लें, 14 नज़्में और फ़ारसी की 2 ग़ज़लें शामिल हैं। इनके अलावा 'अफ़शाँ' शीर्षक के

---

1. काल, 2. घटनाएँ, 3. भावनाएँ, 4. प्रकाश, 5. अनुभव, 6. संकेत, 7. वे अच्छे काम जिससे नाम बाक़ी रहे, 8. तूर का प्रकाश, 9. तख़्मीसे यानी शे'र के दो मिस्रों में तीन मिस्रे और जोड़कर पाँच कर देना, ख़म्स, 10. तूर की ज्योति, 11. शीराज़ की शराब

अधीन विविध शे'र और अपूर्ण ग़ज़लें दी गयी हैं।

1958 में इसका बहुत बढ़िया और चित्ताकर्षक संस्करण, अंजुमन तरक्क़ी-ए-उर्दू, हिन्द, अलीगढ़ ने प्रकाशित किया। इसको 1955 से 1957 की अवधि में प्रकाशित होनेवाली उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हुए साहित्य अकादेमी ने उन्हें पाँच हज़ार रुपये और एक प्रशस्ति पत्र भेंट किया था। इसके भी अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। फरवरी, 1967 में मक़तबा जामिया, नयी दिल्ली ने भी इसका एक बढ़िया संस्करण प्रकाशित किया। इसमें 7 ग़ज़लों की वृद्धि की गयी है जो 1958 के बाद कही गयी थीं। इस संस्करण में रशीद अहमद सिद्दीक़ी और आले अहमद सरूर के लेख शामिल नहीं हैं।

यादगारे जिगर

डॉ. मुहम्मद इस्लाम ने लखनऊ विश्वविद्यालय से जिगर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध प्रबन्ध लिखकर पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। अपने कार्य के सिलसिले में अनुसन्धान करते समय उन्हें जिगर की ऐसी बहुत-सी रचनाएँ उपलब्ध हुईं जो इन तीनों में से किसी भी काव्य-संकलन में नहीं हैं। उन्होंने सबको एकत्रित करके नवम्बर, 1964 में सरफराज़ क़ौमी प्रेस, लखनऊ से मुद्रित कराकर प्रकाशित किया। इसमें 128 पृष्ठ हैं। आरम्भ में लखनऊ विश्वविद्यालय के उर्दू विभागाध्यक्ष डॉ. नूरूल हसन हाशमी की संक्षिप्त भूमिका भी शामिल है। इस संकलन की प्रस्तावना स्वयं सम्पादक ने इन शब्दों में लिखी है—

> "इस संकलन में मैंने जिगर की वे अप्राप्य रचनाएँ, जो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थी, एकत्रित कर दी हैं और उनके संकलन 'शोला-ए-तूर' (1960 में प्रकाशित) और 'आतिशे गुल' (1958 में प्रकाशित) से तुलना करने के बाद निकाल दी गयीं, अप्राप्य और अप्रकाशित ग़ज़लें, नज़्में और विविध शे'र उद्धृत किए हैं, जिनसे उनके जीवन, देश-प्रेम और काव्य से सम्बन्धित उनके दृष्टिकोण, इस युग के राजनैतिक, धार्मिक और नैतिक जीवन आदि पर प्रकाश पड़ता है।"[1]

सम्पादक ने इसे स्व. सैयद सिद्दीक़ हसन आई. सी. एस. के नाम समर्पित किया है।

---

1. यादगारे जिगर, पृ. 9

3

कला

जिगर ने जिस वातावरण में आँखें खोली और उसका पालन-पोषण हुआ, उसमें शे'र व शायरी के चर्चे आम बात थी। उनका परिवार धार्मिक होने के साथ-साथ साहित्य और काव्य का भी प्रेमी था। ये दोनों विशेषताएँ जिगर के स्वभाव में भी रच-बस गयी थीं। उनकी धर्मनिष्ठा, उनके शराब का परित्याग करने के बाद, पूर्णरूपेण प्रकट हुई। आरम्भिक जीवन मद्यपता तथा बेफ़िक्री में व्यतीत हुआ। किन्तु इस अवस्था में भी उनके दिल में धर्म के प्रति आस्था बराबर बनी रही।

जिगर बड़े रसिक स्वभाव के थे। प्रेम और सौन्दर्य ही उनका संसार था। आयुपर्यन्त, वे इसी के गीत गाते रहे। इसके लिए ग़ज़ल की विधा ही सबसे अधिक उपयुक्त होती है। अतः जिगर ने ग़ज़ल को ही अपनाया और सदा ही इसकी साधना करते रहे। दूसरी विधाओं की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। हाँ, कुछ नज़्में अवश्य कहीं, किन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। अपने काव्य के बारे में स्वयं उन्होंने कहा है—

> "मेरा काव्य ग़ज़ल तक ही सीमित है और चूँकि प्रेम और सौन्दर्य ही मेरा जीवन है। इसलिए कुछ अपवादों को छोड़कर मैं कभी दूसरे क्षेत्र में क़दम रखने का साहस न कर सका।"[1]

इसलिए निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि जिगर केवल ग़ज़ल ही के कवि हैं। ग़ज़ल कहना उनके काव्य की जान है। वे संगीत कला में भी रुचि रखते थे और इससे उन्होंने पर्याप्त लाभ उठाया और शे'र में वह जादू भर दिया जिसका उदाहरण कम-से-कम उनके समकालीन कवियों की रचनाओं में नहीं मिलता। जब वे अपने विशिष्ट लयात्मक स्वर में कविता पढ़ते थे, तो निश्चय ही सारे आलम पर छा जाने का वातावरण पैदा हो जाता था।

जिस ज़माने में जिगर को शराब से लगाव था, उस काल में स्वाभाविक रूप में उनके काव्य पर भी शराब का उन्माद छाया हुआ था। इसलिए उनके आरम्भिक

---

1. शोला-ए-तूर (प्रकाशन, 1934), पृ. 3

दौर की रचनाओं में शराब के गीत अधिक सुनायी पड़ते हैं। उदाहरण के रूप में, 'दाग़े जिगर' के ये शे'र दृष्टव्य हैं—

इस चश्में मय फ़रोश[1] से कोई न बच सका,
सबको वक़द्र हौसला-ए-दिल सरूर था।
देखा था कल जिगर को सरे राहे मयक़दा,[2]
इस दर्जे पी गया था कि नशे में चूर था।

× × ×

काम आख़िर कर गयी वह नर्गिस-ए-मस्ताना आज,
भर गया बे मिन्नत, साक़ी[3] मेरा पैमाना आज।
झुक गया एक-एक मैकशा[4] इस निगाहे मस्त से,
तुम इधर देखा किए और लुट गया मयख़ाना आज़।।

× × ×

जुरए[5] मय भी अदाएँ निगाहे नाज़ में हैं,
चश्मे मख़्मूर[6] में कुल राज़ है मयख़ाने का।

× × ×

सरूर कम न कभी होगा अब क़यामत तक,
ख़म हुज़ाज़[7] की पीकर शराब आते हैं।
मैं सुन के हज़रत-ए-असग़र के ए जिगर अशआर,
वह मस्त हूँ कि कोई पी के बादा-ए-ख़्वार[8] न हो।।

× × ×

यही सहबा[9], यही साग़र[10], यही पैमाना है।
चश्म साक़ी है कि मयख़ाने का मयख़ाना है।
तुम दिखा दो जिधर आँखें वही मख़मूर बने।
हम जहाँ शीशा पटक दें, वहीं मयख़ाना बने।।

---

1. शराब बेचनेवाले की आँख
2. मदिरालय
3. शराब पिलानेवाला
4. शराब पीनेवाला
5. घूँट
6. नशे में डूबा
7. वफ़ा
8. शराबी
9. शराब (लाल रंग की)
10. शराब का प्याला

कहीं साग़र बकफ़[1] गुल हैं, कहीं खुम[2] दर बग़ल गुँचे,
चमन ही मयकदा भी बन गया जब से बहार आयी।

× × ×

साक़िया तोबा किए लेते हैं, ले गुनहगार हुए जाते हैं।

× × ×

मशरूत[3] निगाह-ए-साक़ी की तहरीक पे जिसका पीना है,
बस इसका साग़र साग़र है, बस इसका मीना[4], मीना है।

जब उन्होंने शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली, तब भी शराब का उल्लेख उनका प्रिय विषय रहा, किन्तु बदली हुई कल्पना के साथ। अब यह मार्फ़त[5] की शराब हो गयी। इस प्रकार शराब की कल्पना तो यथावत् रही किन्तु भाव बदल गया। अतः कहते हैं—

तू साक़ी-ए-मयख़ाना है, मैं रिंद-ए-विला नोश,
मेरे लिए मयख़ाने का मयख़ाना बना दे।
अल्लाह ने तुझको मय-ओ-मयख़ाना बनाया,
तू सारी फिज़ा[6] को मय-ओ-मयख़ाना बना दे।

× × ×

मय-ओ-मीना के पर्दे उनको धोखा दे नहीं सकते,
अज़ल[7] के दिन से जो राज़-ए-मय-ओ-मीना समझते हैं।

वैसे तसव्वुफ़ (सूफ़ी दर्शन) उनका मूल विषय नहीं। प्रेम और सौन्दर्य ही उनका संसार है और मद्यपान तथा मौज-मस्ती उनके जीवन की सम्पत्ति है। वास्तव में वह एक सहृदय और सन्तुलित स्वभाव के व्यक्ति रहे थे। यही कारण है कि उन्होंने युग की आवश्यकताओं को प्रेम और सौन्दर्य की आवश्यकताओं के साथ अनुभव किया और उन्हें काव्यात्मक रूप दिया।

प्रेम की अवधारणा

जिगर आरम्भिक जीवन से ही प्रेम के रसास्वादन से परिचित हो गए थे और

1. हाथ में
2. टेढ़ा
3. शर्त किया हुआ
4. शराब की बोतल
5. परमात्मा तक पहुँचने का एक सोपान
6. वातावरण
7. जिसके आरम्भ का पता न हो।

जीवन-भर प्रेम की मदिरा के उन्माद में डूबे रहे। उनके काव्य में प्रेम की जो अवधारणा मिलती है, वह उनकी निजी अनुभूतियों और अनुभवों पर आधारित है और संभव है इसीलिए उसमें प्रभावोत्पादकता और मार्मिकता मौजूद है। वे सही अर्थों में प्रेम की कटुताओं से परिचित थे और इसमें जिन कष्टों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनका जिगर को निजी अनुभव था। इसीलिए उन्होंने कहा था—

यह इश्क़ नहीं आसाँ बस इतना समझ लीजे,
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।

उन्होंने स्वयं भी कहा है, "मुझे साहित्य एवं काव्य पर सबसे बड़ा गर्व यह है कि मेरे जीवन और मेरे काव्य में अनुरूपता है, विरोधाभास नहीं[1] जिगर के यहाँ प्रेम का उल्लेख कुछ नया नहीं। उर्दू कविता के प्रारंभ से लेकर जिगर तक और वर्तमान युग में भी जबकि उर्दू कविता की प्रकृति में बदलाव आ गया है और प्रौद्योगिक तथा वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ उर्दू कविता की विषय-वस्तु में भी स्पष्ट अन्तर आ गया है, प्रेम और सौन्दर्य का वर्णन उर्दू कविता में आम है। क्लासिकी कविता में तो इसे ग़ज़ल का मूल आधार ही माना जाता था। इसीलिए वली, मीर, सौदा, ज़ौक़, ग़ालिब, मोमिन, आतिश तथा नासिख आदि कवियों की रचनाओं का मूल प्रेरणा-स्रोत प्रेम ही रहा है। दाग़ के काव्य में यह तत्त्व अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया और उर्दू ग़ज़ल केवल प्रेम प्रदर्शन और प्रेयसी-वर्णन तक सीमित होकर रह गयी। यही वह कविता है जिसके विरुद्ध हाली ने 'मुक़द्दमा-ए-शे'र-ओ-शायरी' में अपनी आवाज़ बुलन्द की। ख़्वाजा मीर दर्द जैसे सूफ़ी कवि के यहाँ भी 'प्रेम ही सब-कुछ है'। यह दूसरी बात है कि यह प्रेम, हक़ीक़ी (वास्तविक) का रूप धारण कर लेता है। वर्तमान काल में भी जबकि कविता का विषय-क्षेत्र व्यापक हो गया है, प्रेम और सौन्दर्य के वर्णन को बुनियादी महत्त्व प्राप्त है।

जिगर के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य की उन सब प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं जो उर्दू कविता में आम हैं। जिगर ने उनका बड़ी कुशलता और दक्षता से निर्वाह किया है और उनकी अभिव्यक्ति में अपूर्व गरिमा का प्रदर्शन किया है। उनका प्रियतम कोई काल्पनिक या अस्तित्वहीन प्राणी नहीं बल्कि वास्तविक है और वे वास्तव में उसके वियोग में तड़पते हैं। उनकी प्रेम-गाथाएँ कोरी काल्पनिक कथाएँ नहीं, बल्कि ऐसे व्यक्ति के अनुभव हैं, जो इन कठिन मार्गों से वास्तविक अर्थों में गुज़रा है। इसी के परिणामस्वरूप वे ऐसे शे'र कह सकते हैं—

---

1. शोला-ए-तूर (1934 का प्रकाशन), पृ. 5

मुहब्बत ऐन मजबूरी सही लेकिन यह क्या बाइस,[1]
मुझे बावर[2] नहीं आता, मेरा मजबूर हो जाना।

× × ×

किताब-ए-इश्क़ का मुश्क़िल तरीन बाब[3] हुआ,
वह एक दर्दे मुहब्बत जो सिर्फ़ ख़्वाब हुआ।

× × ×

इश्क़ तो इश्क़, हुस्न से बेज़ार,
दिल को क्या हो गया है, क्या कहिए ?

× ×

वफ़ा का नाम कोई भूलकर नहीं लेता
तेरे सलूक ने चौंका दिया ज़माने को।

× ×

किस कद्र जामऊ[4] है मेरा आलम तस्वीर भी,
हुस्न की तशरीह[5] भी है, इश्क़ की तफ़सीर[6] भी।

× × ×

तफ़सीर हुस्न-ओ-इश्क़ जिगर मसलहत[7] नहीं,
अफ़शाए[8] राज़े क़तरा-ओ-दरिया न कीजिए।

× × ×

अल्लाह अगर तौफ़ीक़[9] न दे, इन्सान के बस का काम नहीं,
फेज़ाने[10] मुहब्बत आम सही, अर्फ़ाने[11] मुहब्बत आम नहीं।

× × ×

तौहीन इश्क़ देख, न हो ऐ जिगर न हो,
हो जाए दिल का ख़ून, मगर आँख तर न हो।

---

1. कारण
2. विश्वास
3. अध्याय
4. शामिल, कुल
5. स्पष्टीकरण
6. खोलकर समझाना
7. परामर्श
8. खोलना
9. राजकीय घोषणा
10. लाभ पहुँचाना
11. परमात्मा को जानना

जुनूने इश्क़ की क़ाफ़िर अदाइयाँ तौबा,
निगाहे ज़हद[1] भी पड़ने लगी हरीसानाँ[2]।

× × ×

जिगर की प्रेम और सौन्दर्य की अवधारणा विभिन्न कठिन मार्गों से गुज़र कर पूर्ण और पुष्ट बनी है। जैसे-जैसे, प्रेम प्रसंगों में इनके अनुभव बढ़ते गए, इनकी अभिव्यक्ति में भी विविधता आती गयी और इनके काव्य में परिपक्वता तथा लोकप्रियता बढ़ती गयी। ये सर्वत्र छाने लगे। यह वह स्थान है जहाँ से वह अपनी एक पृथक् हैसियत प्राप्त कर लेते हैं—

मेरा क़माले शे'रे बस इतना है ए जिगर,
वो मुझ पे छा गए, मैं ज़माने पे छा गया।

बीसवीं सदी में उर्दू ग़ज़ल के चार स्तम्भ माने जाते हैं—फ़ानी, हसरत, असग़र और जिगर। कुछ लोगों का विचार है कि जिगर इन सबमें ऊँची और वैयक्तिक हैसियत के मालिक हैं। इनकी रचनाओं में प्रेम और सौन्दर्य के ऐसे सुन्दर चित्र मिलते हैं जो हमें फ़ानी, हसरत और असग़र, बल्कि जिगर के अन्य समकालीन कवियों जैसे आरज़ू लखनवी, अज़ीज लखनवी और सफ़ी लखनवी के यहाँ भी नहीं मिलते। फ़ानी का समस्त काव्य नैराश्य और दुःखों में डूबा हुआ है। इसमें मीर तक़ी मीर का प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। असग़र के काव्य पर तसव्वुफ़ की छाया और दार्शनिक रहस्यात्मकता है, हसरत रूमानी कवि हैं। इनका स्वर स्पष्ट रूप से भिन्न है। जिगर के यहाँ की वेदना, उन्माद, मौज़-मस्ती और आनन्दातिरेक में आत्म-विस्मृति का वातावरण है। यह वह परम्परा है जिसका सूत्र-पात 'मीर' ने किया था। इसकी कुल झलक असग़र के काव्य में दिखायी देती है। जिगर के यहाँ ये विचार और भाव बड़े सन्तुलित रूप में मिलते हैं।

दुनिया के सितम याद, न अपनी ही वफ़ा याद,
अब मुझको नहीं कुछ भी मुहब्बत के सिवा याद।
जब कोई हसीं होता है सरगर्म-ए-नवाज़िश[3],
उस वक़्त वो कुछ और भी आते हैं सिवा[4] याद।

× × ×

1. निर्लिप्त
2. शत्रुतापूर्ण
3. कृपा
4. अधिक

वो अदाए दिलबरी[1] हो कि नवाए[2] आशिक़ाना,
जो दिलों को फ़तह कर ले, वही फ़ातहे[3] ज़माना।

× × ×

यह है इश्क़ की करामत, यह कमाले शायराना,
अभी मुंह से बात निकली, अभी हो गयी फ़साना[4]।
क्या कशिश हुस्न बे-पनाह में है,
जो क़दम है उसी की राह में है।

× × ×

जिगर के आरम्भिक दौर के काव्य में परम्परागत ढंग के आनन्दमूलक तत्त्वों का प्राधान्य है। किन्तु उनकी विशेषता यह है कि वे कभी स्तर से नीचे नहीं गिरते। इस दौर में भी वे अपने विशिष्ट धरातल पर दिखायी पड़ते हैं, और यह उपलब्धि कोई साधारण नहीं। इसका सौभाग्य कम ही कवियों को मिला है। घुलावट और प्रेमालाप इस दौर में भी दिखायी पड़ता है। फिर, जैसे-जैसे उनका रंग निखरता गया काव्य में सौष्ठव भी बढ़ता गया। अन्तिम दौर में इसने बड़ा रोचक रूप ले लिया। अब उनके प्रेम की पीड़ा भी एक मधुर और आनन्दमयी स्थिति में बदल जाती है। अब दुःख दर्द को, जिगर ने अपने जीवन का अनिवार्य अंग बना लिया।

मैं रहीन[5] दर्द सही, मगर मुझे और चाहिए क्या जिगर,
ग़मे यार है मेरा शेफ़्ता[6] मैं फ़रेफ़्ता[7] ग़मे यार पर।

× × ×

बहुत हसीन सही सोहबतें गुलों की मगर,
वो ज़िंदगी है, जो काँटों के दरमियां गुज़रे।

× × ×

जिगर ने सभी उस्तादों (काव्याचार्यों) से लाभ उठाया है। उनके काव्य में मीर और ग़ालिब की मुख्य विशेषताओं का समावेश दिखायी देता है। मोमिन की ग़ज़ल-गोई और दाग़ की चपलता भी स्पष्ट है। स्वयं जिगर ने अपने काव्य पर आचार्यों के प्रभाव के बारे में बड़ी स्पष्ट बात कही है। वे कहते हैं—

---

1. प्रेमिका
2. आवाज़
3. विजेता
4. कहानी
5. गिरवी रखी हुई
6. आसक्त
7. मुग्ध

"हो सकता है मेरे काव्य में कहीं-कहीं मोमिन का प्रभाव अनौपचारिक रूप में मौजूद हो। किन्तु स्मरण रहे, मैं अनुकरण के पक्ष में नहीं हूँ। फिर भी इस बात को स्वीकार करता हूँ कि मेरी आरम्भिक रचनाओं पर दाग़ का स्पष्ट प्रभाव मौजूद है। ग़ालिब की महानता और प्रेम मेरे दिल में है, किन्तु अनुयायी मैं उनका भी नहीं।"[1]

जिस काल में जिगर ने कविता करना आरम्भ किया, उस समय दाग़ और अमीर की तूती बोल रही थी। सब ओर उनके चर्चे थे। दाग़ के यहाँ प्रेयसी से छेड़छाड़ और चंचलता अधिक थी। इसलिए उन्होंने अमीर की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठता हासिल कर ली और आम जनता में अधिक लोकप्रिय हो गए। इनके यहाँ न दर्शन है, न तसव्वुफ़[2] और न ही अभिव्यक्ति-शैली में जटिलता। बस सीधे-साधे ढंग से हृदय के भाव स्पष्ट कर देते हैं और वे भी इस ढंग से कि प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव से मेल खाए। यह विशेषता अमीर के काव्य में इतनी सुस्पष्ट नहीं है। इसलिए दाग़ को आम जनता में प्रसिद्धि मिली। जिगर के कानों में भी यही मधुर-गान गूँज रहे थे। मानसिक रूप में उन्होंने भी इन्हीं का प्रभाव स्वीकार किया। इनके आरम्भिक दौर की ग़ज़लें, दाग़ के गीतों का प्रत्यावर्तन प्रतीत होती है और कहीं-कहीं तो वे दाग़ के इतने समीप हो गए हैं कि इनके और दाग़ के काव्य में अन्तर करना कठिन हो जाता है जैसे उनकी यह ग़ज़ल—

मज़्द[3]-ए-शौक़े शहादत[4] ओज पर तक़रीर है,
आज दस्ते नाज़ में नाज़ुक-सी एक शमशीर[5] है।
कम नहीं होती दिले इज़ा[6] तलब की ख़्वाहिशें[7]
आप देखें तो सही, तरकश में कोई तीर हैं।

या फिर अगले शे'र

---

1. उर्दू (त्रैमासिक) कराची, जुलाई, 1959, पृ. 125 का सन्दर्भ
2. सूफ़ी दर्शन
3. शुभ सन्देश
4. बलिदान
5. तलवार
6. कष्ट
7. इच्छाएँ

किस क़यामत[1] की कशिश[2] इस जज़्बए[3] कामिल में है,
तीर उनके हाथ में पैकाँ[4] हमारे दिल में है।

× × ×

निगाहों से बचकर कहाँ जाइएगा,
जहाँ जाइएगा हमें पाइएगा।

× × ×

सितम का उदु[5] मुस्तहक़[6] हो गया,
मेरा दिल सरापा कलक[7] हो गया।
मेरी मौत सुनकर किया उसने ज़ब्त[8],
मगर रंग चेहरे का फ़क़ हो गया।

× × ×

सरापा मुहब्बत बने जा रहे हैं,
सलामत रहें उनको बहकाने वाले।

सब दाग़ के रंग में रँगे हुए है और सरसरी नज़र में उन्हें जिगर से सम्बन्धित करने में कठिनाई होती है।

इसके बाद जैसे-जैसे उनकी कला में परिपक्वता आती गयी, उनके काव्य में गांभीर्य और गरिमा बढ़ती गयी, उनकी रचनाओं में काव्यात्मक और यथार्थ चित्रणं स्पष्ट होने लगा। यही वह स्थान है जहाँ से वे मोमिन की सीमाओं में प्रवेश कर सकते हैं। अत: उनकी परिपक्वता और उत्कर्ष के युग की कविताओं में मोमिन की शैली की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण के लिए कुछ शे'र यहाँ प्रस्तुत हैं।

आँखों में नूर, जिस्म में बनकर वो जाँ रहे,
यानी हमीं में रह के वो हमसे निहाँ[9] रहे।

× × ×

---

1. प्रलय
2. आकर्षण
3. भावना
4. तीर की नोक
5. शत्रु
6. हक़दार
7. बेचैन
8. संयम, अनुशासन में छिपे हुए
9. छिपे हुए

कहाँ मुमकिन था इस चश्मे इनायत का इधर होना,
मगर काम आ गया मेरी फुगाँ[1] का बेअसर होना।

× × ×

शबे फ़िराक़[2] है और नींद आयी जाती है,
कुछ इसमें तवज्जह भी पायी जाती है।

× × ×

आयी है मौत मंज़िले मकसूद[3] देखकर,
इतने हुए क़रीब कि हम दूर हो गए।

× × ×

ग़ुरबत[4] का रंग भी न गवारा हुआ जिगर,
कितने ही मेरे बाद ग़रीबुल वतन[5] हुए।

× × ×

कुछ शे'र तो ऐसे है जो मोमिन से प्रत्यक्षतः लाभान्वित होने के सूचक हैं—

वह हमारे क़रीब होते है,
जब हमारा पता नहीं होता।

× ×

बाद मरने के भी क़रार नहीं,
मरेंगे[6] नाक़ाम इसको कहते हैं।
तेरी अमानते ग़म का तो हक़ अदा कर लूं,
ख़ुदा करे शबे फ़ुरकत[7] अभी दराज़[8] रहे।

जिगर सौन्दर्य कला के पारखी और उसके पुजारी हैं, उनका प्रेम सदा नवीन और मद-भरा है। वे इसे सदा जीवित मानते हैं। यही कल्पनाएँ हमें मोमिन की रचनाओं में भी स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। कुछ आलोचकों ने उनकी रचनाओं पर 'मीर' और ग़ालिब के प्रभाव की भी खोज की है। मुहीउद्दीन क़ादरी जोर ख़्वाजा मीर 'दर्द' और अल्लामा इक़बाल से भी उनके डांडे मिलाए हैं। उनका मत है—

---

1. आवाज़
2. विरह की रात
3. गन्तव्य
4. मुसाफ़िरत
5. परदेशी, यात्रा
6. मृत्यु
7. जुदाई की रात
8. लम्बी

"मीर, दर्द, ग़ालिब, मोमिन, दाग़ और इक़बाल से, वे धीरे-धीरे प्रभावित होते रहे और संभवतः यही कारण है कि उनकी रचनाओं में उर्दू के इन उस्तादों की न केवल झलकियाँ ही मिलती हैं बल्कि कुछ मामलों में तो वे इनसे भी आगे निकल गए हैं।"[1]

प्रत्येक बड़ा कलाकार दूसरे महान् कलाकारों से अवश्य लाभान्वित होता है और उनकी उच्च परम्पराओं को अपनाने का प्रयत्न करता है। अत: जितने भी बड़े कलाकार हैं, उनकी सर्वोत्तम कला-कृतियों में दूसरे महान् कलाकारों की झलक तो अवश्य दिखायी देती है। प्रत्येक कवि के यहाँ काव्य के क्षेत्र में अन्य आचार्यों के काव्य की विशेषताएँ अवश्य परिलक्षित होती हैं। यह कार्य सायास भी होता है और सहज भाव से भी। जब यह प्रयास सायास होगा, तो कविता दूसरे की अनुगामी और पराश्रित बन जाएगी। किन्तु जब यह काम सहज भाव से होगा तो वह कविता सजीव और दीर्घकालीन होगी और इसका क्षेत्र बड़ा व्यापक होगा। जिगर के सम्बन्ध में भी यही बात है। उन्होंने उर्दू कविता की समस्त उच्च परम्पराओं को अपनाया और उन्हें अपने काव्य में समोया है और इस सुन्दरता से उनका सामंजस्य किया है कि उसने अनुसरण की सीमाओं से निकलकर सहज प्रयास का रूप ले लिया है। यही कारण है कि उनके काव्य में हर बड़े कवि का रंग झलकता हुआ प्रतीत होता है। इसी के परिणामस्वरूप उनके काव्य से उर्दू साहित्य में एक सुन्दर योगदान सम्भव हो सका है।

प्रियतम की कल्पना

जिगर के यहाँ प्रियतम की कल्पना बहुत निराली है। इस मामले में वे सामान्य मार्ग से हटकर चलते हैं। उनका प्रियतम कोई काल्पनिक आकृति या अस्तित्व से परे की वस्तु नहीं, बल्कि हाड़-मांस का बना इन्सान है, जिसे प्रकृति ने अक्षुण्ण सौन्दर्य प्रदान किया है। वह इस योग्य है कि उसके प्रेम में आबद्ध हुआ जाए। यह प्रेम भी वास्तविक है, काल्पनिक नहीं। जिगर के मन में प्रियतम का बहुत सम्मान है। वे उसका तिरस्कार या अनादर सहन नहीं कर सकते। वे स्वयं इन्सान थे और इन्सान की गरिमा को हर हाल में बनाए रखना चाहते थे। उनका ध्येय था 'मनुष्य द्वारा मनुष्यता की प्रतिष्ठा'। उनकी यही भावना उनके काव्य में भी लक्षित होती है। दूसरे कवियों की भाँति उनका प्रियतम भी निष्ठुर, अभिमानी और आत्मश्लाघी है। किन्तु, इसके बावजूद वे उसका तिरस्कार नहीं करते। उन्होंने उसको एक नया मोड़ दिया वे उपालंभ और उलाहना देने की बजाए, उसको अपने स्वभाव से इतना

1. सब रस (मासिक) हैदराबाद, सितम्बर, 1960, पृ. 3

प्रभावित कर लेते हैं कि वह अनायास उनके प्रेम-पाश में बँध जाता है। इस प्रकार दोनों ओर बराबर की आग लग जाती है। इनका प्रियतम विवश हो जाता है कि उनके प्रेम का प्रत्युत्तर भी इसी भावना से दे। मानो कि इसमें चाहने और चाहे जानेवाली स्थिति पैदा हो गयी। एक सच्चे प्रेमी की सबसे बड़ी सफलता भी यही है।

अर्ज़ेनियाज़े[1] इश्क़ का चाहिए और क्या सिला[2],
मैंने कहा बचश्म[3] उसने सुना बचश्मे नम[4]।

× × ×

अब तो तासीरे ग़म यहाँ तक पहुँची,
कि उधर होश अगर है, तो इधर होश नहीं।

× ×

मुहब्बत के जलवे नहीं हुस्न से कम,
उन्हें भी मेरे साथ हैरानियाँ हैं।

× ×

उफ़-ओ-रूए ताबनाक़[5] ओ चश्मतर मेरे लिए,
हाय रे ज़ुल्फ़े परेशाँ ता कमर मेरे लिए।
इश्क़ ही तन्हा नहीं शोरीदा[6] सर मेरे लिए,
हुस्न भी बेताब है और किस क़दर मेरे लिए।

× × ×

मिलता जाता है मिज़ाज हुस्न ही से रंगे इश्क़,
शमा ग़र बेबाक़ है, गुस्ताख़[7] परवाना भी है।

× ×

जहाँ. वो हैं वहीं मेरा तसव्वुर[8]
जहाँ मैं हूँ ख़्याले यार भी है।

× ×

---

1. निवेदन
2. बदला
3. आँख से
4. तर
5. प्रकाशवान
6. परेशान
7. धृष्ट
8. कल्पना

मीर की भाँति जिगर भी प्रियतम के प्रति सम्मान के पक्ष में हैं। वह सौन्दर्य के दरबार में धृष्ठ नहीं, बल्कि उन्हें प्रियतम की गरिमा का भी पूरा-पूरा ध्यान है। उन्होंने किसी भी कठिन डगर पर आलस्य और प्रमाद की भावना का परिचय नहीं दिया। यह वह विशेषता है, जिसमें जिगर बड़े-बड़े उस्तादों (आचार्यों) से बाज़ी ले गए। सम्भव है आरम्भिक दौर की कविता मे उनके कुछ शे'र ऐसे मिल जाएँ जो इस कसौटी पर पूरे न उतरे। किन्तु प्रथम तो वे संख्या में बहुत कम हैं, फिर उस दौर मे सम्बन्ध रखते है जिसको हम किसी भी स्थिति में जिगर का प्रतिनिधि दौर नहीं कह सकते। उनका वास्तविक रंग प्रियतम के प्रति सम्मान का ही है। वे कहते हैं—

हुस्न के अहतराम[1] ने मारा,
इश्क़-ए-बेनंग-ओ-नाम ने मारा।

× × ×

रानाई[2]-ए-खयाल को रुसवा[3] न कीजिए,
मुमकिन भी हो तो अर्ज-ए-तमन्ना[4] न कीजिए।

× × ×

हुस्न बेताब तजल्ली[5] खुद है, लेकिन ऐ जिगर,
एक हल्का-सा हिजाब[6]-ए-चश्म-ए-हैराँ चाहिए।

× × ×

वक्त आए तो हम जान भी कर देंगे फ़िदा,
क्या यह मुमकिन है तेरे नाम की इज्जत न करें।

× × ×

हुस्न की बारगाह[7] में रखिए सँभाल कर क़दम,
यह वह मुकाम है जहाँ ख्वाहिशे[8] दिल हराम है।

कभी प्रियतम के द्वार तक पहुँचने के लिए कवि बेचैन हो उठता है और समस्त बन्धनों को तोड़कर उधर चल पड़ता है। मार्ग की कठिनाइयाँ और रुकावटें बाधक

---

1. सम्मान
2. सुन्दरता
3. बदनाम
4. इच्छा
5. प्रकाश
6. शर्म, पर्दा
7. दरबार
8. इच्छा

नहीं होती। वह पागलों की भाँति चलता जाता है। प्रियतम के दर्शनों की यह चाह मार्ग में रुककर दम लेने की भी छूट नहीं देती।

लेही पहुँची बेखुदी-ए-शौक़ बज़्म[1]-ए-यार तक,
गो मुझे इक-इक क़दम, एक-एक मंज़िल हो गया।

× × ×

जज़्बा-ए-शौक़ ने दम लेने का मौक़ा न दिया,
शमा मुँह देखती ही रह गयी परवाने का।

× × ×

शौक़ ने तोड़ ही डाले थे मुहब्बत के क़यूद[2],
होश आया है पहुँच कर दरे जानाँ के क़रीब।

× ×

नहीं जानते कुछ कि जाना कहाँ हैं,
चले जा रहे हैं, मगर जाने वाले।

× ×

अल्लाह री वारफ़्तगी[3]-ए-शौक़ का आलम,
मेरा भी पता अब सरे मंज़िल नहीं चलता।

जिगर ने प्रियतम के शारीरिक गुणों का वर्णन करना पसन्द नहीं किया। इसीलिए उनके यहाँ महबूब (प्रियतम) का कोई स्पष्ट जातीय चित्र नहीं बनता। वे बाह्य सौन्दर्य की तुलना में चारित्रिक सौन्दर्य को अधिक वरीयता देते हैं। किन्तु जिगर काल्पनिक सौन्दर्य के पुजारी नहीं, उनका महबूब वास्तविक व्यक्तित्व रखता है। वह इसी प्रकार गतिमान है, चलता और फिरता है जिस प्रकार कि कोई व्यक्ति। इस मामले में उनके विचार हसरत मोहानी के समान हैं। उन्होंने भी जहाँ कहीं महबूब का उल्लेख किया, उसमें उसकी जीती-जागती तस्वीर सामने आ जाती है। जिगर भी हमारी आँखों के सामने एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लाकर खड़ा कर देते हैं। वह हमारे सामने हू-ब-हू वही भाव-भंगिमाएँ करता नज़र आता है, जिनका वर्णन कवि कर रहा है। उदाहरणस्वरूप उनकी क्रमिक ग़ज़ल है—

वह कब के आए भी और गए भी, नज़र में अब तक समा रहे हैं,
यह चल रहे हैं, वह फिर रहे हैं, यह आ रहे, वह जा रहे हैं।
वही क़यामत है क़द-ए-बाला, वही है सूरत, वही सरापा है,
लबों को जुंबिश, निगाह को लर्जिश, खड़े हैं और मुस्करा रहे हैं।

---

1. सभा
2. नियम
3. बेख़ुदी

खिराम[1] रंगीं, निजाम[2] रंगीं, कलाम रंगीं, पयाम[3] रंगीं,
क़दम-क़दम पर, रविश[4] रविश पर, नए नए गुल खिला रहे हैं।
शराब आँखों से ढल रही है, नज़र से मस्ती उबल रही है,
छलक रही है, उछल रही है, पिए हुए है, पिला रहे है।

इस कविता में उन्होंने प्रियतम के क्रिया-कलापों का चलने-फिरने का, बातें करने का ऐसा, जीता-जागता चित्र खींचा है कि प्रत्येक शे'र से हमें यही अनुभव होता है, मानो यह व्यक्ति हमारी आँखों के सामने है और हम इसकी एक-एक क्रिया का अवलोकन कर रहे है। हम स्वयं को इसकी सभा में मौजूद पाते है।

इसी प्रकार उनकी यह ग़ज़ल—

काम आख़िर जज्बाए, बे-इख़्तयार आ ही गया,
दिल कुछ इस सूरत से तड़पा, उनको प्यार आ ही गया।
जब निगाहें उठ गयी अल्लाह री मेराजे[5] शौक़,
देखता क्या हूँ कि वह जाने बहार आ ही गया।
दर्द ने करवट ही बदली थी कि दिल की आड़ से,
दफ़ेतन[6] पर्दा उठा और पर्दादार आ ही गया।
जान ही दे दी जिगर ने आज पाए यार पर,
उम्र भर की बे-क़रारी को क़रार आ ही गया।

यह ग़ज़ल उनके सजीव चित्रण का एक उत्तम उदाहरण है।

तसव्वुफ

जिगर सूफ़ी नहीं थे। वे धर्म में रुचि अवश्य रखते थे, किन्तु उसमें लीन नहीं थे। वे लगभग पचास वर्ष की उम्र तक शराब का सेवन करते रहे और इसमें इतने आगे बढ़ गए कि स्वयं को भी भूल गए। फिर वे स्वयं ही अपने सुधार की ओर प्रवृत्त हुए। शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली और आयु के अन्तिम बीस वर्षों में उन्होंने शराब को बिल्कुल मुँह नही लगाया। इस काल में धर्म से उनका लगाव अधिक हो गया था। बचपन में उन्हें धार्मिक वातावरण मिला था। फिर असग़र गोंडवी से भेंट के बाद उनके दिल में धर्म के प्रति आदर की भावना बढ़ गयी थी।

---

1. मस्त चाल
2. व्यवस्था
3. सन्देश
4. बाग़ की पटरी
5. सीढ़ी, अति उच्च
6. अकस्मात

इसी के साथ काज़ी अब्दुलग़नी मंगलौरी का अनुयायी हो जाने से उनके जीवन में *परिवर्तन आ गया। उनकी सुसंगति से उनका दिल परमात्मा के प्रेम में डूब गया।* ये सब प्रभाव उनके काव्य में दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ तक कि उनके आरम्भिक दौर के काव्य में भी इसकी झलक स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। इसी प्रकार अनायास उनके काव्य में सूफ़ी दर्शन के तत्वों का समावेश हो गया है। यहाँ हमें असग़र का प्रभाव नज़र आता है। जिगर को असग़र के प्रति जो आस्था, उसका प्रभाव न केवल उनके निजी जीवन पर पड़ा, बल्कि उनका काव्य भी उनसे प्रभावित हुआ। इस बात को स्वयं जिगर भी स्वीकार करते थे और बहुधा इसका उल्लेख भी वे किया करते थे।

क्यों कर बहार शेर से टपके न ऐ जिगर,
रंगे कलामे हज़रते असग़र नज़र में है।

अहमद हुसैन खाँ 'अहमर' रफ़ाई का कहना है—

असग़र ने केवल इतना ही नहीं किया कि जिगर को काज़ी साहब के प्रति आस्थावान् व्यक्तियों में शामिल करा दिया, बल्कि उनका सबसे बड़ा कार्य यह है कि थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी संगति से जिगर की जीवन-पद्धति भी बदल दी और इस प्रकार उन्हें एकाकी और सँकरी तथा अंधी भूल-भुलैयों से निकालकर जीवन की व्यापक, स्पष्ट और अमूल्य तथा न जाने कितनी वास्तविकताओं से परिचित करा दिया। जिगर के उत्तरकालीन काव्य में नैतिक मूल्यों का जो बाहुल्य दिखायी देता है उसे प्रत्यक्ष रूप से असग़र की संगति का ही सुखद परिणाम समझना चाहिए।[1]

प्रेम और प्रेम विषयक मामले, जिगर के काव्य की बुनियाद है। यही प्रेम जब अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाता है, तो हक़ीक़ी (वास्तविक) प्रेम का रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार मजाज़ी (सांसारिक) सौन्दर्य का मतवाला हक़ीक़ी सौन्दर्य के प्रति आसक्त हो जाता है।

चश्मे नज़र परस्त में जिसका जहान नाम है,
हुस्न तमाम यार का जलवाए[2] नातमाम है।

× × ×

रूह क़ाबिल[3] से निकलकर असिल में गुम हो गयी,
ने[4] से होते ही जुदा नग़्मा परेशाँ हो गया।

---

1. उर्दू (त्रैमासिक) जुलाई 1959, पृ. 154-155
2. प्रकाश
3. शरीर
4. बाँसुरी

सूफ़ी ने जिसको शाहिद मुतलक़[1] समझ लिया,
इक परतो[2] लतीफ़[3] था हुस्ने मजाज़ का।

× × ×

मजाज़ हो कि हक़ीक़त यहाँ तो हाल यह है,
तेरे हज़ूर से उठे, तेरे हज़ूर आए।

× × ×

कोनैन[4] है इवारत[5] इस इश्क़ बे अमाँ से,
निकला यही फ़साना उल्टा वरक़[6] जहाँ से।

जब जिगर तसव्वुफ़ की गहराइयों में उतर जाते हैं तो ख़्वाजा मीर दर्द के बहुत समीप हो जाते हैं—

समझा गया इक जलवाए बेताब किसी का,
जो राज़ कि महबूब[7] था फ़हम[8] बशरी का।

× ×

कोई न यहाँ अदम[9], न हस्ती,
अव्वल आखिर जो कुछ है तू है।

× ×

मैं तेरा अक्स[10] हूँ कि तू मेरा।
इस सवाल-ओ-जवाब ने मारा।

जिगर का कौशल इस बात में है कि उन्होंने तसव्वुफ़ के साथ दर्शन को नही आने दिया। यही कारण है कि उनके काव्य में शुष्क विषय नही मिलते। वे तो हर स्थिति में आत्म-विस्मृति के गीत गाते हैं, जिसमें प्रेम और सौन्दर्य की गाथाएँ होती हैं जो चरम उत्कर्ष पर पहुँचकर वास्तविक प्रेम का रंग ले लेते हैं। ये विषय दर्शन शास्त्र के शुष्क विषयों के अनुकूल नहीं हो सकते।

---

1. पूर्ण
2. विश्व झलक
3. आनन्ददायक
4. दोनों लोक का
5. लेख
6. पर्चा
7. छिपा हुआ
8. बुद्धि
9. परलोक
10. प्रतिबिम्ब

ग़ज़ल कहने की कला (रमणीयता)

रमणीयता शे'र की जान होती है, यही वह गुण है, जिससे काव्य में प्रभाव उत्पन्न होता है। जिगर के काव्य का वास्तविक कौशल भी उनका ग़ज़ल कहने का ढंग है।

जिगर अपने शे'रों में ग़ज़ल का रंग भरने के लिए कई विधियाँ अपनाते हैं। काव्य-कला और संगीत-कला में सामंजस्य स्थापित करके उन्होंने काव्य में भाव और आकर्षण उत्पन्न किया है। वे ऐसे कोमल और प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं जो स्वतः संगीत का सृजन कर देते है। भारी और अपरिचित शब्दों से यथासम्भव बचने का प्रयत्न करते हैं। वे शुष्क और बे-लोच विषयों को कविता के लिए कभी नहीं चुनते। दार्शनिक विषयों या अनावश्यक उपदेशों का उनके काव्य में कोई स्थान नहीं।

सब पे तू महरबान है प्यारे,
कुछ हमारा भी ध्यान है प्यारे।
तू जहाँ नाज़ से क़दम रख दे,
वह ज़मीन आसमान है प्यारे।
हम से जो हो सका, सो कर गुज़रे,
अब तेरा इम्तहान है प्यारे।
× × ×
फिर कोई मेहमाँ न हो जाए,
सई-ए-ग़म[1] रायगाँ[2] न हो जाए।
दिल को ले लीजिए जो लेना है,
फिर यह सौदा गिराँ[3] न हो जाए।
इश्क़ कर ही चुका था अपना काम,
दिल अगर दरम्याँ न हो जाए।
× × ×
जब मसर्रत[4] क़रीब आयी है,
ग़म ने क्या क्या हंसी उड़ायी है।
× × ×

---

1. दुःख का प्रयास
2. व्यर्थ
3. महँगा
4. सुखी

भूल जाता हूँ सितम उसके,
वह कुछ इस सादगी से मिलता है।

× × ×

सरापा हक़ीक़त[1] मुजस्सिम[2] फ़साना,
मुहब्बत का आलम जनूं का ज़माना।
नज़र उठते-उठते नज़र मिलते-मिलते,
धड़कते दिलों का वह नाज़ुक फ़साना।

× × ×

शबाब[3]-ओ-हुस्न में बहस आ पड़ी है
नए पहलू निकलते आ रहे हैं।

× ×

तूने सुलझाकर गेसूए[4] जानाँ[5]
और बढ़ा दी दिल की उलझन।
काँटों का भी हक़ है आखिर
कौन छुड़ाए अपना दामन।

× ×

आ ही गया इक मस्ते शबाब
शीशा बदस्त[6]-ओ-नग़मा बलब[7]
बीत गयी जो दिल पे न पूछ
हिज्र की शब और आख़िर शब

× ×

इश्क़ वह तिश्नाए[8] काम है कि जिसे
ज़हर का घूंट है आबे हयात[9]।

× ×

---

1. असलियत
2. ठोस, साक्षात्
3. यौवन
4. केस
5. प्रेमिका
6. हाथ में
7. होंठ पर
8. प्यासा
9. अमृत

जिगर को शब्दों तथा मुहावरों पर पूरा अधिकार है। वे इनका यथास्थान और सहज प्रयोग करने की कला में दक्ष है। इस सम्बन्ध में उनके यहाँ दिल्ली स्कूल और लखनऊ स्कूल की महत्त्वपूर्ण विशेपताओं का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। भावों की बहुलता के साथ शब्दों और मुहावरों के सहज प्रयोग ने इनके काव्य में दुहरा आकर्षण पैदा कर दिया है।

मुझे दें न ग़ैज़[1] में धमकियाँ, गिरे लाख बार ये बिजलियाँ
मेरी सल्तनत यही आशियाँ[2] मेरी मिलक़ियत यही चार पर
मैं रहीने दर्द सही मगर मुझे और चाहिए क्या जिगर
ग़मे यार है मेरा शेफ्ता[3] मैं फ़रेफ़्ता[4] ग़मे यार पर

× × ×

क्या चीज़ थी, क्या चीज़ थी, ज़ालिम की नज़र भी
उफ़ करके वहीं बैठ रहा दर्दे जिगर भी।
होती ही नहीं कम शबे फ़ुरक़त की सियाही
रुख़सत हुई क्या शाम के हमराह सहर[5] भी।
मायूस[6] शबे हिज्र न हो ऐ दिले बेताब
अल्लाह दिखाएगा, तो देखेंगे सहर भी।

× × ×

काम आख़िर ज़ज़्बाए-बे-इख़्तयार आ ही गया
दिल कुछ इस सूरत से तड़पा, उनको प्यार आ ही गया।
हाय यह हुस्ने तसव्वुर का फ़रेबे रंगो बू
मैं यह समझा जैसे वह जाने बहार आ ही गया।

× × ×

गुलशन परस्त[7] हूँ मुझे गुल[8] ही नहीं अजीज़,
कांटो से भी निबाह किए जा रहा हूँ मैं।

---

1. क्रोध
2. घोंसला
3. आसक्ति
4. मुग्ध
5. प्रात:
6. निराशा
7. वाटिका का प्रेमी
8. फूल

यों जिन्दगी गुजार रहा हूँ तेरे बग़ैर,
जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूँ मैं।

× × ×

मुहब्बत में जिधर देखो बहारे जावदानी[1] है,
हजूमे रंगो बू है, हुस्न-ओ-नग़्मा है जवानी है।
इलाही भेज दे ऐसे में उस जाने तमन्ना[2] को,
सकूत[3] शब का सन्नाटा है और दिल की कहानी है।

× × ×

तेरे जलवों में गुम होकर, ख़ुदी से बेख़बर होकर,
तमन्ना है कि रह जाऊँ ज सरता या नज़र होकर।
बहारे लाला-ओ-गुल, शोख़िए बर्क़[5]-ओ-शरर[6] होकर,
वह आए सामने लेकिन हजाबाते[7] नज़र होकर।
यहाँ तक जज्व कर लूँ, काश तेरे हुस्ने कामिल को,
तुझी को सब पुकार उठें गुज़र जाऊँ जिधर होकर।

उर्दू काव्य में दुःख, पीड़ा और नैराश्य वर्णन बहुत आम बात है। प्रत्येक कवि ने इनका वर्णन किया है। किसी ने वास्तविक और किसी ने काल्पनिक रूप में। जिसने आपबीती का वर्णन किया और दिल की गहराइयों से किया, उसके काव्य में टीस और तड़प पैदा हो गयी और जिसको इसका श्रेय नही मिला और केवल दूसरों की देखा-देखी इन विषयों पर काव्य-रचना की, वह अनुकृति प्रतीत होने लगी। कुछ कवियों ने केवल पीड़ा को ही अपनी कविता का विषय नही बनाया बल्कि जीवन के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति भी की। जिगर भी इसी कोटि के कवि हैं। उन्होंने दुःख-दर्द को अपने काव्य का आधार नही बनाया, बल्कि दूसरे विषयों को भी स्थान दिया। हाँ, हृदय पर लगी चोटों का वर्णन वे अवश्य करते रहे। जिगर को भी विफलताओं और अभावों का सामना करना पड़ा। उन्होंने प्रेमिका के वियोग के आघात सहे। प्रेमिका के दुःख और ज़माने के दुःख, दोनों के

---

1. सदा
2. इच्छा
3. नीरवता
4. आत्म सम्मान
5. बिजली
6. चिंगारी
7. पर्दा

वे शिकार रहे। इन सारी घटनाओं का उल्लेख करना उनके लिए अवश्यंभावी था। अतः अपनी शायरी में उन्होंने ये गाथाएँ सुनायी हैं। किन्तु इस सुन्दरता से कही हैं कि इनमें आप-बीती से अधिक जग-बीती का भाव पैदा हो गया है। इसी-लिए इन्हें जो भी सुनता है उसे अपने ही हृदय की पुकार सुनायी देती है। अभि-व्यक्ति की इस शैली से ग़ज़ल कहने की उनकी कला में भी निखार आ गया है।

दिल को न छेड़, ऐ ग़मे फ़ुर्क़त[1] कि अब यह दिल
तेरे भी इल्तिफ़ात[2] के क़ाबिल नहीं रहा।

× × ×

बहारे रफ़्ता[3] मेरी फिर न आएगी ऐ जिगर वापस,
चमन में हर ख़िजाँ के बाद लेकिन इक बहार आयी।

× × ×

वही हैं शाहिद[4]-ओ-साक़ी, मगर दिल बुझता जाता है,
वही है शमा लेकिन रोशनी कम होती जाती है।

× ×

हाय वह क्योंकर जी बहलाए,
ग़म भी जिसको रास न आए।
ज़ब्त[5] मुहब्बत, शर्त मोहब्बत,
दिल है कि ज़ालिम उमड़ा आए।

× ×

जो मुसर्रतों[6] में खलिश नहीं, जो अज़ीयतों[7] में मज़ा नहीं,
तेरे हुस्न का भी कुसूर है, मेरे इश्क़ की खता नहीं।
मेरे दर्द में यह ख़लिश कहाँ, मेरे सोज़[8] में यह तपिश कहाँ,
किसी और ही की पुकार है, मेरी ज़िन्दगी की सदा[9] नहीं।

---

1. वियोग का दुःख
2. आनन्द
3. गुज़र गयी
4. प्रेमिका
5. नियन्त्रण
6. प्रसन्नता
7. पीड़ा
8. दुःख
9. आवाज़

वो हज़ार दुश्मने जाँ सही, मुझे ग़ैर फिर भी अज़ीज़ है,
जिसे ख़ाके पा तेरी छू गयी, वह बुरा भी हो तो बुरा नहीं।

× × ×

कोई मरता कोई जीता ही रहा,
इश्क़ अपना काम करता ही रहा।
ग़म वह मयख़ाना, कमी जिसमें नहीं,
दिल वह पैमाना कि भरता ही रहा।

× × ×

तबीयत इन दिनों बेगानाए ग़म होती जाती है,
मेरे हिस्से की गोया हर ख़ुशी कम होती जाती है।
सहर[1] होने को है बेदार शबनम होती जाती है,
ख़ुशी मिनजुमलाए[2] असबाब मातम होती जाती है।

× × ×

मिल गयी इश्क़ में ईज़ा[3] तलबी से राहत,
ग़म है अब जान मेरी, दर्द है अब दिल मेरा।

× × ×

दर्द-ओ-ग़म दिल की तबीयत बन चुके,
अब यहाँ आराम ही आराम है।
होशियार - ओ - कामयाबे ज़िन्दगी,
ज़िन्दगी नाकामियों का नाम है।

× × ×

तूले[4] ग़म हयात से घबरा न ऐ जिगर,
ऐसी भी कोई शाम है, जिसकी सहर नहीं।

× × ×

हक़ीक़त में जो राज़े दूरी-ए-मंज़िल समझते है,
उन्हीं को हम सलूके इश्क़ में कामिल समझते हैं।

---

1. प्रातः
2. सब में से
3. कष्ट
4. लम्बाई

हमें क्यों वह जफ़ाए[1] खास के क़ाबिल समझते हैं,
यह राज़े दिल है उसको महरमाने[2] दिल समझते हैं।

× × ×

जमाल[3] इनका मिज़ाज अपना, ग़म उनका ज़िन्दगी अपनी
हयात हुस्न है गोया, हयाते आशिक़ी अपनी।

सादगी

सादगी जिगर के काव्य की जान है। उन्होंने यथासम्भव सादा और सरल संरचनाओं तथा परिचित और सुबोध शब्दों का प्रयोग किया है। इससे उनके काव्य में सरलता, मधुरता और सुन्दरता आ गयी है। कभी-कभी वे इस ढंग से शे'र कह जाते हैं कि लगता है जैसे वे बात कर रहे हों। यह सादगी और चातुर्य ऐसी कला है जिस पर प्रत्येक कलाकार जान न्यौछावर करता है। जिगर की यह सादगी सरल-से-सरल बन गयी है। जब शे'र में यह गुण पैदा हो जाए कि इसको पढ़ने और सुननेवाला यह अनुभव करे कि यह बात तो मेरे मन की थी! इस ढंग से बात कहना तो कुछ कठिन नही है। मैं भी इस बात को इसी प्रकार कह सकता हूँ। किन्तु जब कहने बैठे, तो न कह सके और विवश हो जाए। यह बलाग़त की सीढ़ी होती है। इसके लिए बड़े अभ्यास और परिश्रम की आवश्यकता होती है। ऐसी सादगी और वर्णन-सौन्दर्य जिगर के काव्य में पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। इनके काव्य में ऐसी ग़ज़लों की संख्या बहुत मिल जाएगी, जिनमें ढूंढ़ने से भी कोई कठिन या अपरिचित शब्द नहीं मिलेगा। कुछ शे'र दृष्टव्य हैं—

सभी अन्दाज़े हुस्न प्यारे हैं,
हम मगर सादगी के मारे हैं।
वह हम ही हैं कि जिनके हाथों ने,
गेमुए ज़िन्दगी सँवारे है।

× ×

फूल खिले है गुलशन गुलशन,
लेकिन अपना-अपना दामन।

× ×

---

1. तकलीफ़
2. भेद जाननेवाला
3. सौन्दर्य
4. साहित्य की अलंकारिक शैली

सुनाने चले हैं उन्हें क़िस्सा-ए-ग़म,
बहुत दिल के हाथों से मजबूर होकर,
तजाहुल[1] तग़ाफ़ुल[2] तबस्सुम[3] तकल्लुम[4]
यहाँ तक तो पहुँचे वो मजबूर होकर।

× ×

चलेगा काम तुम्हारा न अब गवाहों से;
कि टपकी पड़ती है शर्मिन्दगी निगाहों से।

× ×

आदमी के पास सब कुछ है मगर,
एक तन्हा आदमियत ही नहीं।

× ×

बराबर से बचकर गुज़र जानेवाले,
यह नाले[5] नहीं बे-असर जानेवाले।
नहीं जानते कुछ कि जाना कहाँ है,
चले जा रहे हैं मगर जानेवाले।
मोहब्बत में हम तो जिए हैं जिएँगे;
वो होंगे कोई और मर जानेवाले।

× ×

क्या खबर थी कि इश्क़ के हाथों,
ऐसी हालत तबाह होती है।
साँस लेता हूँ दम उलझता है,
बात करता हूँ आह होती है।

× ×

इश्क़ को बेनक़ाब होना था,
आप अपना जवाब होना था।
तेरी आँखों का कुछ क़सूर नहीं,
हाँ, मुझी को खराब होना था।

× ×

---

1. जान-बूझकर अनजान बनना
2. उपेक्षा
3. मुस्कराहट
4. बात करना
5. आह, दर्द की पुकार

दिल को बरबाद करके बैठा हूँ,
कुछ ख़ुशी है, कुछ मलाल भी है।

उपमा तथा उत्प्रेक्षा का प्रयोग

जिगर के काव्य की एक बड़ी विशेषता उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का यथास्थान प्रयोग करना है। उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के अभाव में कविता निर्जीव और फीकी रहती है। कुछ लोगों का विचार है कि उनका अति प्रयोग भी कविता को बोझिल और कठिन बना देता है और केवल एक उचित सीमा तक इनके प्रयोग से कविता सजीव और प्रभावपूर्ण बनती है। जिगर इनका प्रयोग पसन्द नहीं करते थे। अत: कहते हैं—

> "मैं उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं को मन से नापसन्द करता हूँ और इनके आधिक्य को मन की विवशता का तर्क मानता हूँ। फिर भी अनायास कहीं-कहीं इस प्रकार के शे'र भी कह गया हूँ, किन्तु एक विशेष प्रकार की नवीनता और विचित्रता के साथ।"[1]

उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ नवीनता और भाव-सौन्दर्य का सशक्त माध्यम होते हैं। इनका इस प्रकार से प्रयोग करना कि शे'र में भाव-सौन्दर्य के साथ ग़ज़ल का रंग और संगीत भी पैदा हो जाए, बहुत बड़ी उपलब्धि है। शे'र में कोई बात भी विस्तार से और खोलकर नहीं कही जाती, अत: उत्प्रेक्षा से काम लिया जाता है और संक्षिप्तता ही काव्य की जान होती है। जिगर ने उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग इसी सीमा तक किया है कि काव्य में प्रतीकात्मकता, भाव-सौन्दर्य और प्रभावोत्पादकता उत्पन्न हो जाए। इसमें वे पूर्णत: सफल हुए हैं। इस प्रकार से वे बड़ी ही कोमल और सूक्ष्म विषयों को व्यक्त कर जाते हैं।

चाहिए इश्क में मुझे आप ही का जमाल सा[2],
दाग़ हर एक बदर सा[3] जख़्म हर एक हिलाल[4] सा।
कभी रूये ज़ेबा[5] पे ग़ुस्से की लहरें,
कि जैसे कोई बिजलियों का खजाना।

× ×

---

1. शोला-ए-तूर, पृ 36
2. ओज
3. पूर्ण चन्द्रमा
4. दूज का चाँद
5. सुन्दर चेहरा

आरिज[1] से ढलकते हुए शबनम का वह क़तरा,
आँखों से झलकता हुआ बरसात का आलम।
वह आरिजे पुरनूर वह कैफ़े[2] निगहें शौक़,
जैसे कि दमे सुबह मनाजात[3] का आलम।

× × ×

फ़िज़ा[4] यह नग़मों से भर गयी है, कि मौज़े दरिया ठहर गयी है,
सक़ूत[5]-ए-नग़मा बना हुआ है, वह जैसे कुछ गुनगना रहे हैं।

× × ×

यह नशा भी क्या नशा है, कहते हैं जिसे हुस्न,
जब देखिए कुछ नींद सी आयी हुई है।

× ×

ज़ानुए[6] शौक़ पर वह पिछले पहर,
नर्गिस नीम ख़्वाब[7] का आलम।

× ×

किस दिल में तुम ही तुम हो, उसका ये फ़साना है,
टूटा हुआ इक मोती बिखरा हुआ दाना है।

× × ×

वह मस्त मानिन्दे रिंद आँखें, वह सुर्ख़ मिसले[8] गुलाब आरिज,
जो हैं मुजस्सिम शराब आँखें, तो है सरापा शबाब आरिज।

× × ×

हया में आए तो रंगे मस्ती, अदा में हो तो हज़ाब[9] पैदा,
वह आँख ख़ुद ही बनेगी साक़ी, नज़र करेगी शराब पैदा।

× × ×

---

1. गाल
2. नशा
3. विनय
4. दशा
5. नीरवता शान्ति
6. जंघा
7. अर्ध निद्रा
8. जैसा
9. शर्म

तेरी याद की उफ़ यह सरमस्तियाँ,
कोई जैसे पीकर शराब आ गया।

× × ×

न तोड़ ऐ दस्ते गुलची[1] बाग़ में फूलों की कलियों को,
कि इनमें कुछ शबाहत[2] पायी जाती है मेरे दिल की।

राजनैतिक काव्य

जिगर राजनैतिक व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने व्यावहारिक राजनीति में कभी भाग नहीं लिया, न किसी राजनैतिक आन्दोलन में शामिल हुए। उनका विचार था कि राजनीति की नींव स्वार्थ और घृणा पर आधारित होती है और यह धोखा-धड़ी का साधन है। अत: उनका परामर्श था—

बाज़ीचाए[3] अरबाबे[4] सियासत से गुज़र जा,
इस कारगाए[5] मकर[6] ओ-ज़लालत[7] से गुज़र जा।

वे प्रेम के पुजारी थे और प्रेम का ही सन्देश संसार को देना चाहते थे—

उनका जो फ़र्ज़ है, अहले सियासत जानें,
मेरा पैग़ाम मोहब्बत है, जहाँ तक पहुँचे।

वे मनुष्य के प्रति आदर और मैत्री के पक्षधर थे। राजनीति के दाव-पेंच उन्हें नहीं आते थे। मदिरापान और मौज-मस्ती ही उनकी दुनिया थी। किन्तु ऐसा भी नहीं है कि वे अपने वातावरण से पूर्णत: अनभिज्ञ रहते हों या अपने चारों ओर घटने-वाली घटनाओं का अनुभव उन्हें न हो। अत: राजनैतिक घटनाओं से प्रभावित होना उनके लिए स्वाभाविक ही था। उनकी अनेक नज्में इसी प्रकार की हैं। वे किसी दुर्घटना या राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित होकर कही गयी हैं।

1942 में, बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा। इससे पूरे देश में तहलका मच गया। चारों ओर अकाल-पीड़ित लोगों के दु:ख-दर्द और उनकी असहाय स्थिति की हृदय विदारक गाथाएं गूंज रही थीं। देश का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं था, जिसने इसके प्रभाव को अनुभव न किया हो। कवियों, साहित्यकारों और प्रबुद्ध लोगों ने

---

1. फूल तोड़नेवाला
2. समानता
3. खेल
4. मालिक
5. कार्य-स्थल
6. धोखा
7. ओछापन

इसे अपनी रचनाओं का विषय बनाया और अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की। जिगर भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। उन्होंने भी 'क़हर-ए-बंगाल' शीर्षक से 16 शे'रों की एक नज्म कही। इसके आरम्भिक कुछ शेर बड़े हृदय-विदारक चित्र प्रस्तुत करते हैं—

बंगाल की मैं शाम-ओ-सहर[1] देख रहा हूँ,
हर चन्द कि हूँ दूर मगर देख रहा हूँ।
इफ़्लास[2] की मारी हुई मख़्लूक़[3] सरे राह,
बेगोरो[4] क़फ़न ख़ाक बसर देख रहा हूँ।
बच्चों का तड़पना वो बिलखना वो सिसकना,
माँ-बाप की मायूस[5] नजर देख रहा हूँ,
बेरहमी[6] बेदर्दी, ओ-अफ़्लास-ओ-गुलामी,
है शामते ऐमाल, जिधर देख रहा हूँ।
इन्सान के होते हुए इन्सान का यह हश्र,
देखा नहीं जाता, मगर देख रहा हूँ।

अंग्रेज सरकार ने स्थिति को सुधारने का प्रयत्न नहीं किया, बल्कि उसकी उपेक्षा और लापरवाही के कारण स्थिति और भी बिगड़ती गयी। जिगर की इस सम्बन्ध में सरकार से शिकायत औचित्यपूर्ण थी। इसकी अभिव्यक्ति वे इन शब्दों में करते हैं—

तामीर[7] के पर्दे में यह अन्दाजे हकूमत,
तख़रीब[8] को उनवाने[9] दिगर देख रहा हूँ।

इसमें वे आशा की एक किरण भी देखते हैं—

हर चन्द कि आसार तो कुछ और है, लेकिन,
एक खैर भी दर पर्दा-ए-शर[10] देख रहा हूँ।

---

1. प्रातः
2. निर्धनता
3. जनता
4. क़ब्र
5. निराशा
6. निर्दयता
7. निर्माण
8. बरबादी
9. शीर्षक
10. चिंगारी

जिगर देश भक्त थे। अपने देश से उन्हें अगाध प्रेम था। विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने का जो प्रयत्न भारतीय जनता कर रही थी, जिगर उसके समर्थक थे और सभी देश प्रेमी भारतीयों की भाँति वे भी अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध थे। वे अपने प्रिय देश के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता के इच्छुक थे। जनता इस स्वतन्त्रता के लिए जो संघर्ष कर रही थी, उसमें उन्हें आशा की किरण दिखायी पड़ती थी। अतः वे 'क़हरे बंगाल' में इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं—

बेदारी[1]-ए-अहसास है हर सिम्त[2] नुमायाँ,
बेताबी-ए-अरबाब[3]-ए-नज़र देख रहा हूँ।
ख़ामोश निगाहों में उमड़ते हुए ज़ज्बात,
ज़ज्बात में तूफ़ाने शरर देख रहा हूँ।
अंजामे सितम अब कोई देखे कि न देखे,
मैं साफ़ इन आँखों से मगर देख रहा हूँ।
सैयाद[4] ने लूटा था इनादिल[5] का नशेमन[6]
सैयाद का लुटते हुआ घर देख रहा हूँ।

× × ×

उन्हें स्वतन्त्रता की प्रभात बेला आती दिखायी दे रही है। अपने देशवासियों को इसकी शुभ सूचना देते हुए वे कहते हैं—

अरबाबे वतन को मेरी जानिब से हो मुज़दाह[7],
अग़ियार[8] को मजबूर सफ़र देख रहा हूँ।
इक तेग़ की चमक-सी नज़र आती है मुझको,
इक हाथ[9]-ए-पर्दे-ए-दर देख रहा हूँ।
रहमत का चमकने को है, फिर नय्यरे[10] ताबाँ[11]

---

1. जागृति
2. दिशा
3. मालिक
4. शिकारी
5. बुलबुलें
6. घोंसला
7. खुशखबरी
8. पराये
9. पीछे
10. सूर्य
11. चमकदार

होने को है इस शब की सहर देख रहा हूँ ।
बेदारी[1]-ओ-आज़ादी-ओ-इख़्लाक़[2]-ओ-मोहब्बत,
इक ख़ुलुद[3] दर आगोशे[4] नज़र देख रहा हूँ ।
जो ख़्वाब कि शर्मिन्दए ताबीर[5] था अब तक,
इस ख़्वाब की ताबीर जिगर देख रहा हूँ ।

देश की स्वतन्त्रता के लिए वे अपने अमूल्य जीवन का भी बलिदान करने को तैयार हैं। अतः साकी से ख़िताब में कहते हैं—

यह सुनता हूँ कि प्यासी है बहुत ख़ाके वतन साक़ी
ख़ुदा हाफिज़ चला मैं सर से बाँधकर क़फ़न साक़ी
सलामत तू तेरा मयख़ाना तेरी अंजुमन साक़ी
मुझे करनी है अब कुछ ख़िदमत दारो[6] रसन साक़ी ।

यहाँ फिर उन्हें स्वतन्त्रता की प्रभात बेला प्रकट होती दिखायी पड़ती है—

ममूद[7] सुबह काज़िब[8] ही, दलील सुबह सादिक़[9] है,
उफक़[10] से ज़िदगी को देख वह उभरी किरन साक़ी ।

जिगर ने बाल गंगाधर तिलक, मौलाना मुहम्मद अली जौहर और महात्मा गाँधी जैसे राष्ट्रीय नेताओं पर भी नज़्में कहीं हैं। इनमें इन नेताओं की राष्ट्रीय सेवाओं की सराहना करते हुए इनके प्रति सम्मान व्यक्त किया है। खेद है कि तिलक और मौलाना मुहम्मद अली पर लिखी नज़्में अब प्राप्य नहीं हैं। हाँ, तिलक पर नज़्म के कुछ शे'र मुहम्मद इस्लाम ने कैसी उलफ़ारूक़ी के सन्दर्भ से अपने शोध प्रबन्ध 'जिगर मुरादाबादी-हयात और शायरी' में उद्धृत किए हैं। तीन शे'र द्रष्टव्य हैं—

तिलक का अगर याद हो नाम तुमको,
जिताना उन्हीं का है इकराम[11] तुमको।

---

1. जागृति
2. प्रेम
3. स्वर्ग
4. गोद
5. वर्णन करना
6. फाँसी
7. प्रकट होना
8. झूठा
9. सच्चा
10. क्षितिज
11. सम्मान

सुनाना उन्हीं का पैग़ाम तुमको,
दिखाना है इस सुबह की शाम तुमको।
तिलक वह कि हर मूए तन इसका गाँधी,
तिलक वह कि सारा चमन इसका गाँधी।

इसी प्रकार गाँधीजी के बलिदान पर जो कविता लिखी है, वह उर्दू साहित्य में एक विशेष स्थान रखती है। वे गाँधीजी की सत्यवादिता, स्पष्ट वक्तृता और उच्च आदर्शों के लिए उनके त्याग एवं बलिदान तथा उनके निःस्वार्थ जीवन के बड़े प्रशंसक थे। वे उनके अहिंसा के सिद्धान्त के भी समर्थक थे। उनको वे पूरे राष्ट्र की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और इतने सरल और सुबोध ढंग से इसे प्रस्तुत करते हैं कि सहसा मुख से वाह···वाह निकल जाती है—

गाँधीजी वह जाते मुकरम[1]
गाँधीजी वह ख़ुलके[2] मुजस्सम।
गाँधीजी वह महसने[3] आज़म,
सोग है जिनका आलम आलम
आँखें उनके सोग में गिरवाँ[4]
सीने उनके ग़म में वीराँ
हिन्दू हो या कोई मुसलमाँ
जिसको देखा हैराँ हैराँ
उनके दिल में सबकी मुहब्बत
उनकी नज़र में सबकी इज़्ज़त
सबकी इज़्ज़त सबकी अज़मत[5]
सबकी सेवा, सबकी ख़िदमत
उनकी सियासत की गहराई
थाह किसी ने जिसकी न पाई
राजेन्द्र और आज़ाद देसाई
इक हद तक उन सबकी रसाई[6]
जंगे आज़ादी के रहबर
प्रेम अहिंसा उनका लश्कर।

इसके बाद वह गाँधीजी का मानव प्रेम और शान्ति तथा सद्भावना के उनके सन्देश की याद दिलाते हैं और देशवासियों को शिक्षा देते हैं कि वे उन बताए मार्ग पर चलकर अपने देश को स्वर्ग तुल्य बनाएँ—

---

1. प्रतिष्ठित, 2. प्रेम, 3. सहायक, कृपालु, 4. रोता हुआ, 5. बढ़ाई, महानता, 6. पहुँच.

इन्सान है जो इन्सान का दुश्मन,
असमत[1] और ईमान का दुश्मन।
नन्ही-नन्ही जान का दुश्मन,
वह है हिन्दुस्तान का दुश्मन।
हिन्दू मुस्लिम मिलकर गाएँ,
गाँधी का पैग़ाम सुनाएँ।
फूल मोहब्बत के बरसाएँ,
जन्नत इस दुनिया को बनाएँ।

1945 में बम्बई में सरकार के विरुद्ध विद्रोह आरम्भ हुआ। इसने शीघ्र ही जन-आन्दोलन का रूप ले लिया। सरकार ने इसे कठोरता से दबाया और हर प्रकार के अत्याचार और हिंसा से काम लिया। इन अत्याचारों को देखकर जिगर को बम्बई शहर 'क़ूचा-ए-क़ातिल'[2] प्रतीत होने लगता है। कहते हैं—

हक़ूमत के मज़ालिम जब से इन आँखों ने देखे हैं,
जिगर हम बम्बई को कूचा-ए-कातिल समझते हैं।

स्वतन्त्रता के बाद भारत का वातावरण दूषित हो गया था। प्रत्येक और साम्प्रदायिकता की अग्नि भड़क रही थी। झगड़े-फ़साद हो रहे थे। मनुष्य का मनुष्य बैरी बना हुआ था। धर्म की आड़ लेकर एक-दूसरे के विरुद्ध लोगों की भावनाओं को भड़काया जा रहा था। पूरे देश में साम्प्रदायिकता का विष व्याप्त था। समझदार वर्ग के लोग इस स्थिति मे बहुत चिन्तित थे और इस कलुष को समाप्त करने की चेष्टा में लगे हुए थे। जिगर भी इस स्थिति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। उन्होंने अपने विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति 'आजकल' शीर्षक से एक नज़्म मे की है। कहते है—

फ़िक्रे जमील[3] ख़्वाबे परेशाँ है आजकल,
शायर नहीं है वह जो ग़जल ख़्वाँ है आजकल।
साज़े हयात्[4] साज़े शकिस्ता[5] है इन दिनों,
बज़्म-ए-ख़्याल जन्नते वीरां हैं आजकल।
इन्सानियत, कि जिससे इबारत है ज़िन्दगी,
इन्सां के साए से भी गुरेजां[6] है आजकल।
दिल की जराहतो[7] के खिले हैं चमन चमन,
और इसका नाम फसले बहारां है आजकल।

इस ज़माने में स्नेह, प्रेम, सहानुभूति और भाईचारे की भावनाएँ क्षीण हो गयी थी

1. सम्मान, 2. वध स्थली, 3. सुन्दर, 4. जीवन, 5. टूटा हुआ, 6. दूर रहना,
7. घाव

और जीवन दूभर हो गया था। इसका चित्रण जिगर ने इन शब्दों में किया है—

सहने चमन में बूए वफ़ा का पता नहीं,
रंग रुख़े बहार पर अफ़शां[1] है आजकल।
कैसा ख़ुलूस, किसकी मुहब्बत, कहाँ का दर्द,
ख़ुद ज़िन्दगी मताअ[2]-ए-गरेज़ां[3] है आजकल।
अफ़साना बन गयी है वसीअ[4]-उल-ख़यालियाँ,
कम ज़र्फ़ि-ए-मिज़ाज[5] नुमायां हैं आजकल।
साज़िश, दग़ा, फ़रेब सख़ुन परवरी दरोग़[6],
हर दर्द का यह नुस्ख़ा-ए-आसां है आजकल।
शाइस्तगी के भेस में रूहे दरिन्दगी[7]
इन्सान के लिबास में शैतां है आजकल।
देहली-ओ-देहरादून, नौआखाली-ओ-बिहार
इन्सां है और मातमे इन्सां है आजकल।

जो समझदार और सच्चे लोग थे, वे स्वयं को असहाय और विवश अनुभव कर रहे थे—

कुछ रहबराने क़ौम जो मुख़्लिस[8] हैं वाक़ई
उनका चिराग़ भी तहे दामाँ है आजकल।

26 जनवरी, 1950 को स्वतन्त्र भारत का संविधान बना। इसके अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य बन गया। देश की प्रत्येक विचारधारा के लोगों ने इसका स्वागत किया। जिगर ने भी इसे पसन्द किया। किन्तु इसके साथ यह भी कहा कि केवल घोषणा कर देने मात्र से कुछ नहीं होता। इसे क्रियान्वित भी किया जाना चाहिए। इसे जनता की भलाई और देश की समृद्धि एवं प्रगति का साधन होना चाहिए। अतः वे अपनी नज़्म 'ऐलान-ए-जम्हूरियत' में संविधान के सफल होने और उसके द्वारा देश की समृद्धि एवं प्रगति की कामना करते हुए कहते हैं—

ख़ुदा करे यह दस्तूर[9] साज़गार[10] आए,
जो बे-क़रार हैं अब तक उन्हें क़रार आए।
बहार आए और इस शान की बहार आए,
कि फूल ही नहीं काँटों पे भी निखार आए।
वह सरख़ुशी हो कि ख़ुद सरख़ुशी भी रक्स[11] करें,
वह ज़िन्दगी हो कि ख़ुद ज़िन्दगी को प्यार आए।

---

1. प्रकट, 2. धन माल, 3. दूर रहना, 4. विस्तृत विचार, 5. स्वभाव, 6. झूठ, 7. पाशविकता, 8. पवित्र, नेक, 9. विधान, 10. अनुकूल, 11. नृत्य

खिले जो फूल तो दे जिस्म नाज़ की खुशबू,
कली अगर कोई चटके तो सदाए[1] यार आए।

किन्तु इसी के साथ वे चेतावनी भी देते हैं कि जब तक देश में समानता स्थापित नहीं होगी और साम्प्रदायिकता का विष समाप्त नहीं होगा, उस समय तक स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र का लाभ आम लोगों तक नहीं पहुँचेगा—

चमन चमन यही नहीं, जिसके गोशे-गोशे[2] से,
कहीं बहार न आए, कहीं बहार आए।
यह मयकदे की, यह साक़ीगिरी की है तौहीन,
कोई हो जाम बकफ़ कोई शर्मसार आए।

× × ×

मजाके इश्क़ बदल दे मजाज कौन-ओ-फ़साद,
दिलों तक आए जो ग़म भी तो खुशगवार आए।
निज़ामे खल्क-ओ-मुरव्वत[3] कभी जो बरहम[4] हो,
निगाहे लुत्फ़-ओ-मुहब्बत बढ़े, सँवार आए।
दिलों पे नक्श[5] न रह जाए कोई नफ़रत का,
यह फ़ितना[6] बन के न आशूबे[7] रोज़गार आए।
वह हादसाते[8] ज़माना से महव[9] हो जाए,
कि जिनके ज़िक्र से इन्सानियत को आर[10] आए।
नुमाइशी ही न हो यह निज़ामे जम्हूरी[11],
हक़ीक़तन भी ज़माने को साज़गार आए।
न हो जो आम मुसर्रत, महाल[12] है, ऐ दोस्त,
कि ज़िन्दगी को किसी हाल में क़रार आए।

इसी प्रकार उनकी नज़्में 'आवाज़ें', 'फिरते हैं आस्तीनों में खंजर लिए हुए,' 'गुज़र जा' और 'नवा-ए-वक्त' भी तत्कालीन घटनाओं से प्रभावित होकर कही गयी हैं। इन स्थायी राजनीतिक नज़्मों के अलावा उनकी ग़ज़लों में भी ऐसे शे'र निकल आते हैं, जिनमें राजनीतिक दृष्टिकोण की झलक मिलती है—

काम अधूरा आज़ादी का,
नाम बड़े और छोटे दर्शन।
शमा है लेकिन धुँधली धुँधली,
साया है लेकिन रोशन, रोशन।

× ×

1. आवाज़, 2. कोने-कोने, 3. प्रेम, 4. परेशान, 5. चिह्न, 6. झगड़ा 7. बरबाद, 8. दुर्घटना, 9. दूर, 10. शर्म, 11. प्रजातन्त्र, 12. कठिन

आँखें अभी कुछ और भी हैं मुंतज़िर जिगर,
छपरा की क़त्लगाह का मंज़र लिए हुए।

× × ×

बशकल नाख़ुदा[1] जिसमें हैं अब तक जाफ़र व सादिक़,
वह किश्ती गर्क़ हो जाए, तो बेड़ा पार हो जाए।

× × ×

वही है शाहिद[2] ओ साक़ी मगर दिल बुझता जाता है,
वही है शमा, लेकिन रोशनी कम होती जाती है।

× ×

जहले[3] ख़ुर्द ने दिन यह दिखाए,
घर गए इन्सान बढ़ गए साए।

नाज़ जिस ख़ाके वतन पर था मुझे 'आह' जिगर,
इसी जन्नत पे जहन्नुम[4] का गुमाँ[5] होता है।

× × ×

बा हमा[6] जोके[7] आगही[8], हाय रे पस्ती[9] बशर[10],
सारे जहाँ का जायज़ा, अपने जहाँ से बे-ख़बर।

× ×

ज़बाँ पे इस्लाहे कौमी के नारे,
मगर तीनते[11] बेशतर मुफ़स्दाना[12]।

---

1. मल्लाह
2. प्रेमिका
3. अज्ञानता
4. नरक
5. आशंका
6. समस्त
7. शोक
8. सचेत
9. पतन
10. मनुष्य
11. स्वभाव
12. बिगाड़नेवाली

जिगर का राजनीतिक काव्य उनके राजनीतिक विवेक की परिपक्वता और जागरूकता का द्योतक है। वे निष्कपट बुद्धि, नेक स्वभाव और कोमल हृदय के व्यक्ति थे। उनके दिल में सबके लिए आदर था। इसीलिए वे सभी घटनाओं से अवगत रहते हुए भी व्यावहारिक राजनीति में शामिल नहीं हुए राजनीतिक कविता भी उन्होंने विधिवत् नहीं की। बस, कभी-कभी जब हालात से ज्यादा प्रभावित होते, या मित्र-जन आग्रह करते तो इस ओर ध्यान देते। इसीलिए वे अपनी राजनीतिक कविताओं को अधिक महत्त्व नहीं देते थे। इस बात को स्वयं भी उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है—

"बहुधा राजनीतिक नज़्में भी कही हैं, किन्तु मित्रों के आग्रह पर। संभव है कि इनमें कहीं-कहीं दिल की भावना की कुछ झलक मिल जाए। किन्तु मेरे लिए वह गर्व की वस्तु नही।"[1]

फ़ारसी काव्य

जिगर की फ़ारसी रचनाएँ अधिक नहीं हैं। आरंभ में अवश्य उन्होंने कुछ ग़ज़ले फ़ारसी में कही थी, किन्तु शीघ्र ही वे उर्दू की ओर प्रवृत्त हो गए और जब उनके उर्दू काव्य में निखार आ गया और इसमें उन्हें उस्ताद की प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी तो वे केवल उर्दू कविता के ही होकर रह गए। उनके फ़ारसी काव्य की कुल धरोहर 21 ग़ज़लें, 9 अपूर्ण ग़ज़ले, 2 क़तए, 5 नज़्में और विविध शेर हैं।

जिगर के फ़ारसी काव्य में कोई नवीनता नहीं है। वह अनुसरण मात्र है। किन्तु सरलता और सुगमता, पूर्णता जैसी विशेषताओं से परिपूर्ण है। यह फ़ारसी भाषा पर उनके अधिकार और उसमें उनकी दक्षता का द्योतक है। आरंभ में उन्होंने फ़ारसी भाषा का यथेष्ट अध्ययन किया था और यहीं से उन्हें फ़ारसी कविता में रुचि उत्पन्न हो गयी थी। भारत के फ़ारसी कवियों में वे अमीर खुसरो और ईरानी कवियों में हाफिज शीराजी से अधिक प्रभावित थे। इसीलिए उनकी फ़ारसी रचनाओं में इन दोनों का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। उनके प्रति आदर का भाव इन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है—

ऐ खुसरो-ए-खूबाँ, नज़र कुन ज़ सर महर,
उफतादा व कोयत जिगरे सीना फगारे।

—ऐ सौन्दर्य सम्राट, ज़रा इधर को देख तो सही। तेरी गली में एक ऐसा व्यक्ति भी पड़ा है जिसका सीना घायल है।

और हाफिज के बारे में कहते हैं—

---

1. शोला-ए-तूर (प्रकाशन), 1934, पृ. 3-4

हर रोज़ फ़ैज़ गीरम अज रूहे कदस हाफिज़,
बर मन जिगर गवाह् अस्त ई 'जोश व-ई' माअनी।

(मैं प्रतिदिन हाफिज की पवित्र आत्मा से लाभ उठाता हूँ। जिगर कहते हैं कि इसका प्रमाण यह है कि मेरे काव्य में जो ओज और भाव हैं, वह उसी की देन है।)

जिगर की यह स्वीकारोक्ति मात्र औपचारिकता नहीं है। इनको इन दोनों सम्मान्य व्यक्तियों के प्रति जो श्रद्धा थी उसका परिचय विभिन्न घटनाओं से सहज ही मिल जाता है। जैसेकि एक बार वे 'दीवान-ए-हाफ़िज़' का अध्ययन कर रहे थे। इसी दौरान उन्हें नींद ने घेर लिया। दीवान उनकी छाती पर रखा हुआ था। थोड़ी देर बाद जब वे जागे तो बिल्कुल दैविक रूप में उन पर यह ग़ज़ल अवतरित हुई—

गोइंद क:हम ज़ाहिद दर दीदहे बसर दारद,
दारद बसरे अम्मा ताअय्यीने नजर दारद

(कहते है कि त्यागी पुरुष आँखों में बीनाई रखता हैं। यह तो ठीक है कि बीनाई रखता है किन्तु उसकी दृष्टि कुछ ही वस्तुओं को देख सकती है।)

ऐसी ही घटना 'दीवान-ए-खुसरो' के अध्ययन के समय भी घटी थी। इसके अध्ययन के दौरान भी एक बार जिगर को नीद आ गयी और सो गए। थोड़ी देर बाद जब आँख खुली तो स्वतः ही भाव-विह्वलता की एक स्थिति उत्पन्न हो गयी और इस स्थिति में ख़ुसरो की जमीन में सहसा यह ग़ज़ल कह डाली—

फ़ारिग़ ज खज़ाने व हम अज बाग़ बाहरे,
माइयम व ख़याले रूखें खुर्शीद निगारे।

(न तो हमें कोष की आवश्यकता है और न उपवन में बसन्त ऋतु की। बस हम है और उस सूर्यमुखी की कल्पनाएँ है।)

जिगर ने बहुधा फ़ारसी ग़ज़लें हाफ़िज की ज़मीनों में कही है और उन्हीं के हाव-भाव ग्रहण करने का प्रयत्न किया है। चूँकि उन्होंने फारसी में अधिक काव्य-रचना नहीं की इसलिए इसमें उनकी कला अधिक प्रखर होकर सामने नही आ सकी।

□□